मुनियों के शेष गुण तथा राग-द्वेष का अभाव

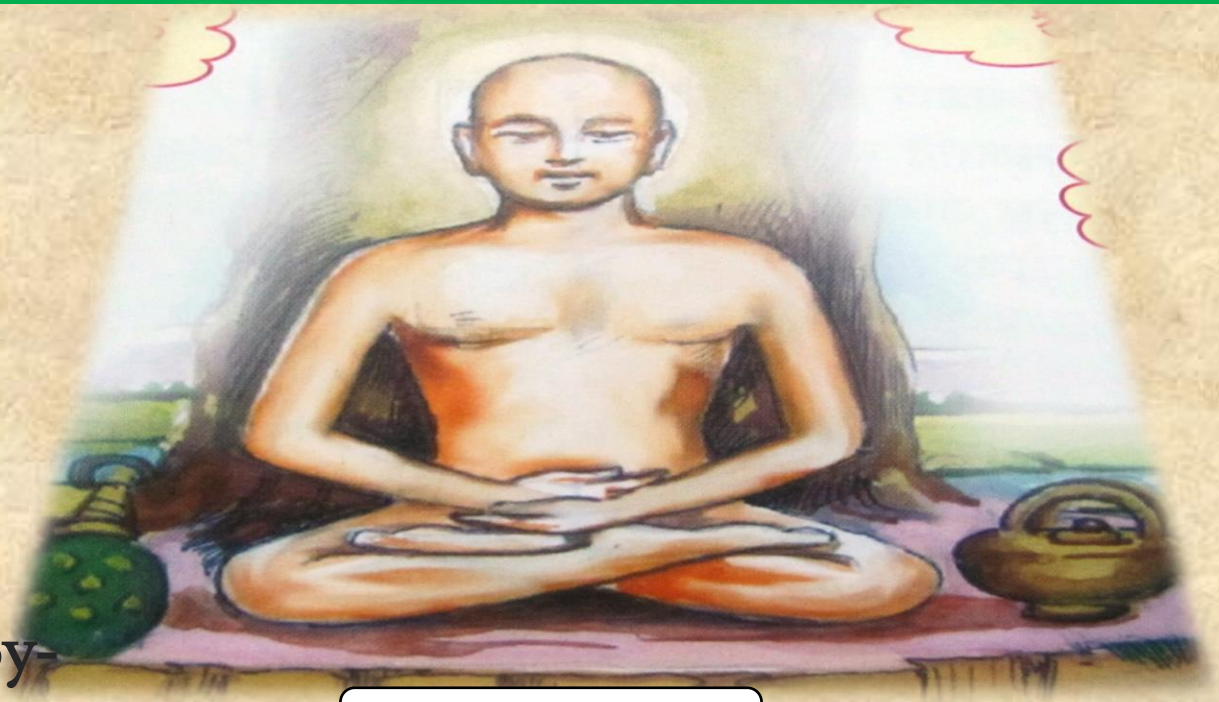

Presentation Created By-
श्रीमती सारिका विकास छाबड़ा

www.JainKosh.org

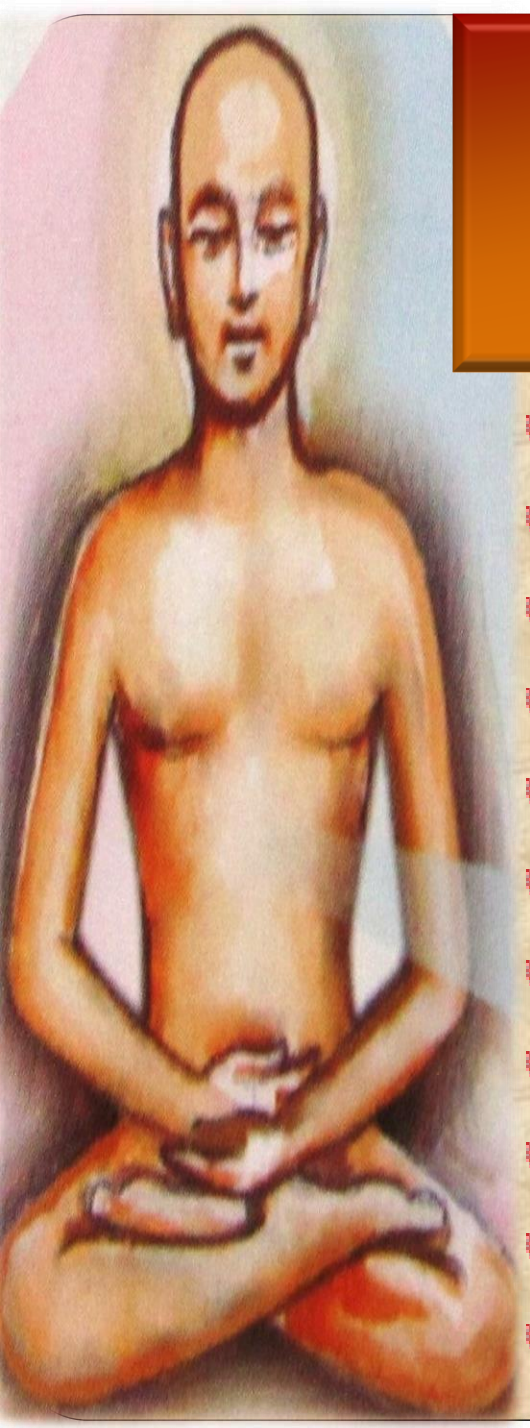

इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में ।
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६ ॥

- निज-पान में= अपने हाथ में
- कचलोंच= केशलोंच,
- परिषह सौं= बाईस प्रकार के परिषहों से
- न डरत= नहीं डरते
- अरि मित्र= शत्रु या मित्र,
- महल मसान= महल या श्मशान,
- कंचन काँच= सोना या काँच
- निन्दन थुति करन= निन्दा या स्तुति करनेवाले,
- अर्घावतारन= पूजा करनेवाले
- असि प्रहारन= तलवार से प्रहार करनेवाले,
- धरन= धारण करते हैं ।

www.JainKosh.org

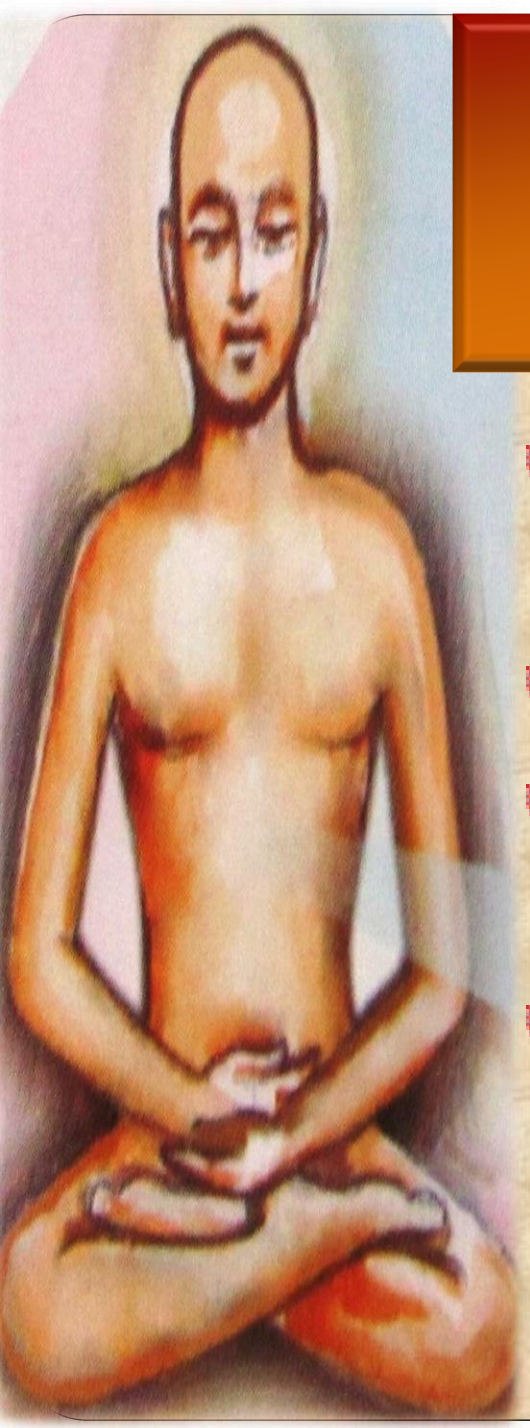

इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में ।
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६ ॥

- वीतराग मुनि दिन में एकबार, खड़े-खड़े अपने हाथ में रखकर थोड़ा आहार लेते हैं;
- केश का लोंच करते हैं
- आत्मध्यान में मग्न रहकर परिषहों से नहीं डरते अर्थात् बाईस प्रकार के परिषहों पर विजय प्राप्त करते हैं
- तथा शत्रु-मित्र, महल-श्मशान, सुवर्ण-काँच, निन्दक और स्तुति करनेवाले – इन सबमें समभाव रखते हैं अर्थात् किसी पर राग-द्वेष नहीं करते ।

www.JainKosh.org

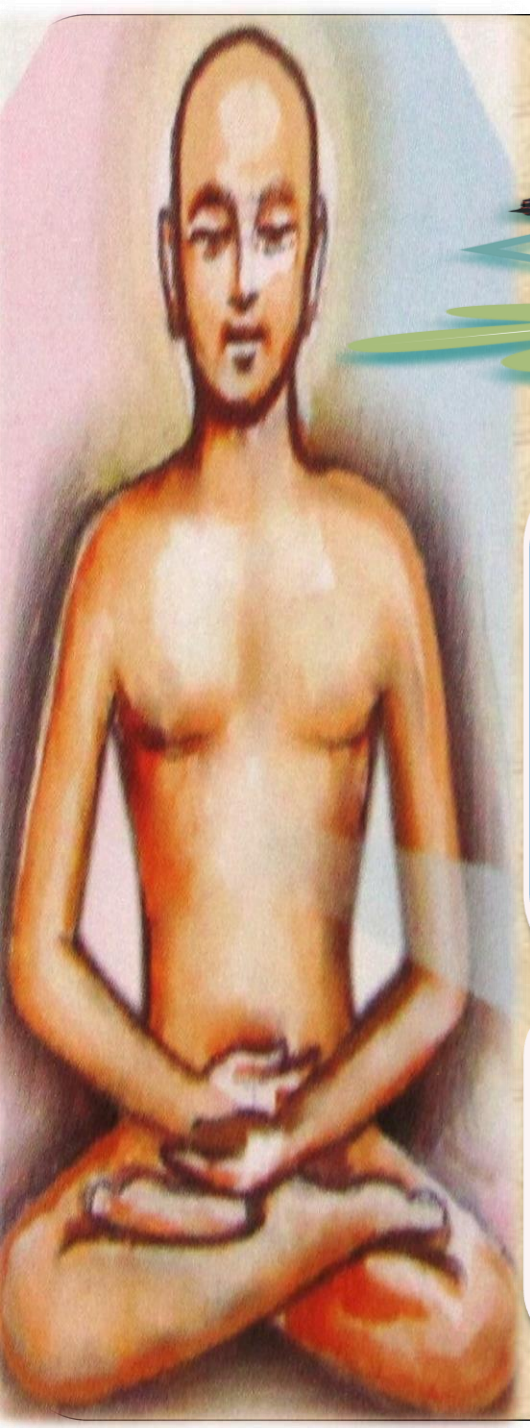

दिन में एक बार आहार लेना

सूर्योदय के तीन घड़ी पश्चात् से सूर्यास्त होने के तीन घड़ी पहले तक के समय में एक मुहूर्त, दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त काल में

एक बार आहार ग्रहण करना एक-भक्त है।

www.JainKosh.org

खड़े- खड़े अपने हाथ में आहार लेना

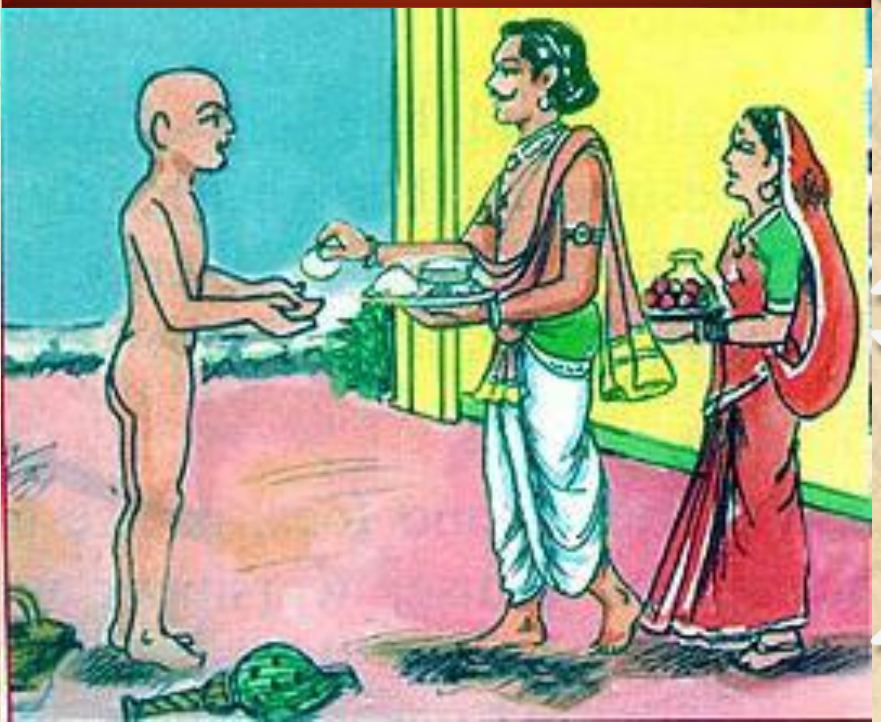

भीत, थंभे आदि का सहारा लिये बिना,

एक पैर से दूसरे पैर को चार अंगुल दूर रख के,

तीनों भूमियों की शुद्धि होने पर

अपने हाथों की अंजुली रूप पात्र में आहार ग्रहण करना स्थिति भोजन कहलाता है।

www.JainKosh.org

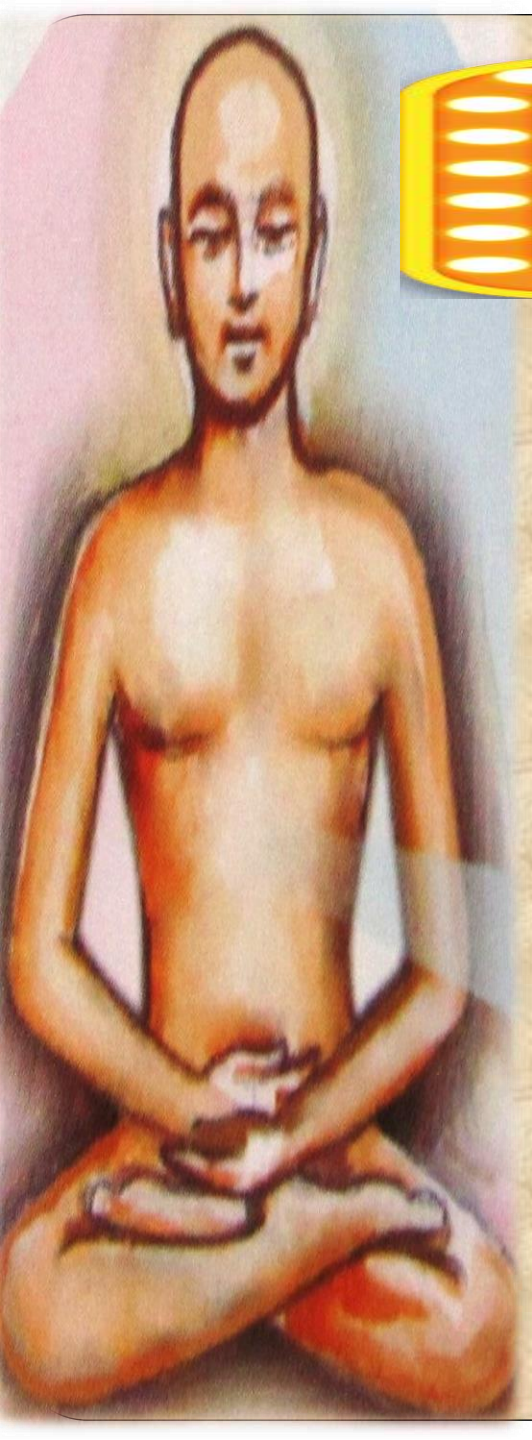

मुनिराज कैसे स्थान पर आहार लेते हैं?

खड़े होने के स्थान पर

जहाँ उच्छिष्ट गिरता हो

जहाँ दातार खड़े होकर आहार देते हों

ये ३ स्थान जन्तुओं के वध, मर्दन आदि दोषों से रहित होने चाहिये ।

केशलोंच

मुनिराज अपने माथे और दाढ़ी-मूँछ के केशों को अपने या दूसरे के हाथ से ही उपाड़ते हैं।

www.JainKosh.org

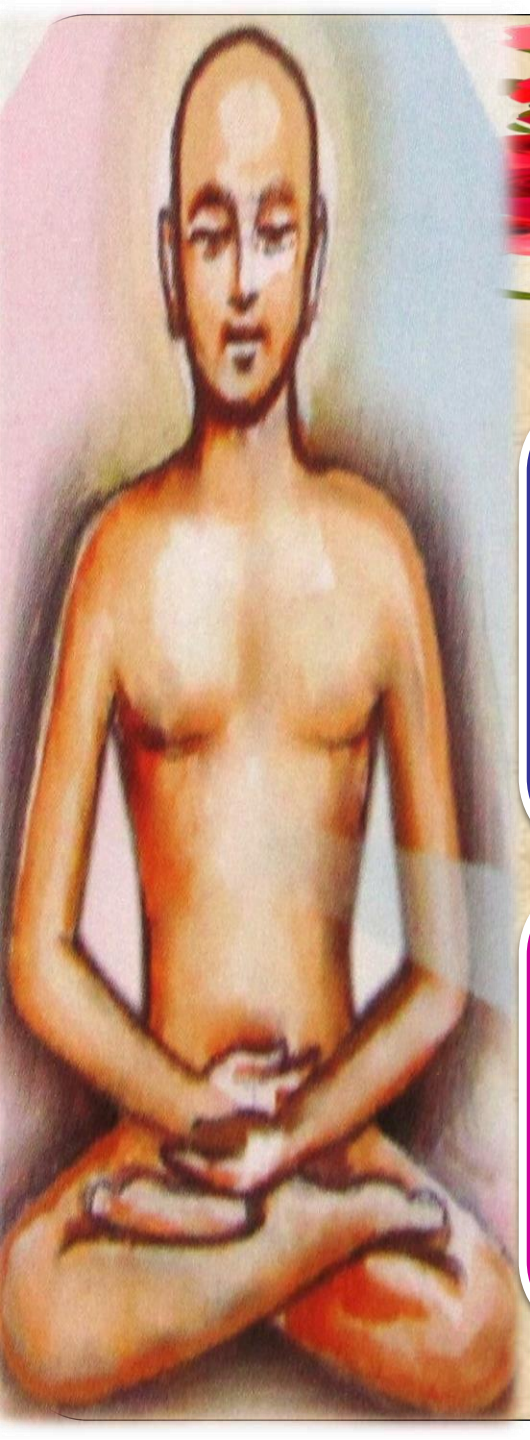

यदि केशों का लोचन न किया जाय, उन्हें बढ़ने दिया जाय तो क्या हानि है?

उनमें सम्मूर्च्छन जीवों का उत्पन्न होना सम्भव है।

उनके अधिक रहने से उनमें रागादि भाव भी पैदा हो सकते हैं।

www.JainKosh.org

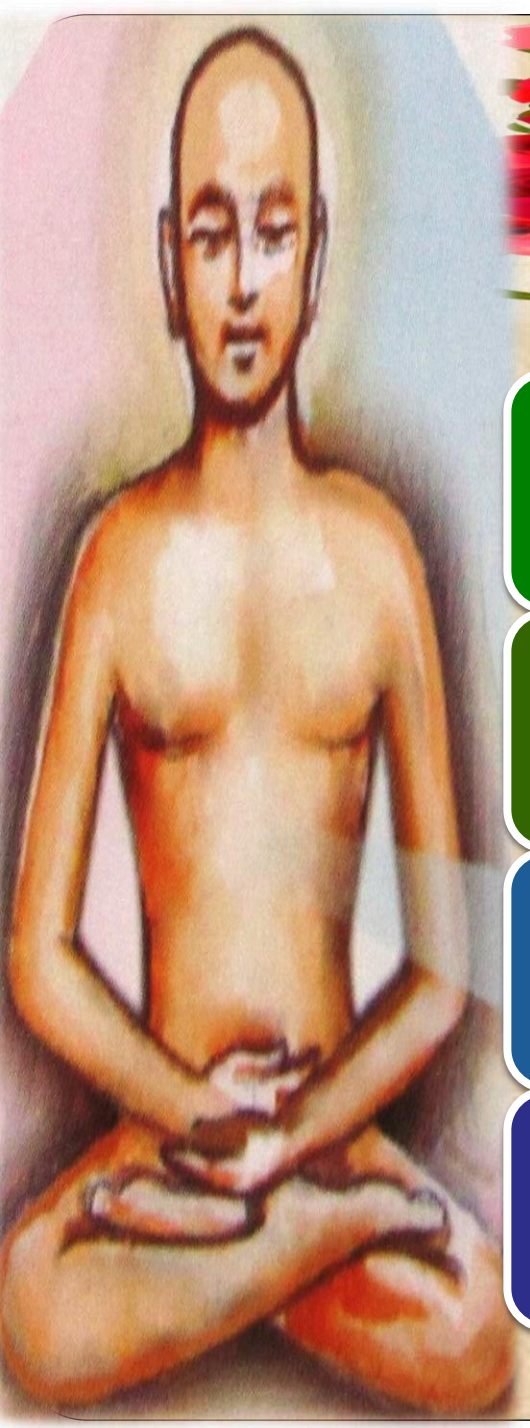

मुनिराज केशलोंच क्यों करते हैं?

हाथों से केशलोच करने से मुनि की आत्मीय शक्ति- महा धीरता, वीरता का परिचय भी मिलता है

यह एक प्रकार का तप है क्योंकि इससे काय- क्लेश पर विजय होता है।

इससे जैन लिंग का गुण भी प्रकट होता है।

निर्ममत्व और धर्म में दृढ़ता विदित होती है।

www.JainKosh.org

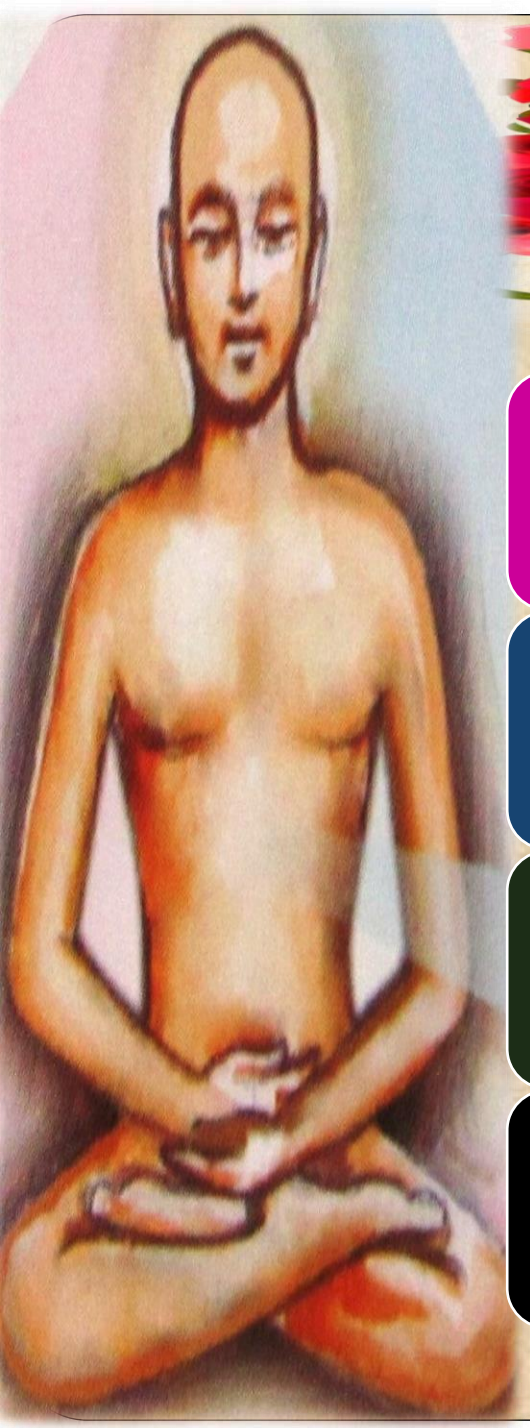

केशलोच हाथों से ही क्यों किया जाता है?

इसके लिए मुनिराज उस्तरे, कैंची आदि का प्रयोग नहीं कर सकते।

क्योंकि यदि वे उस्तरे, आदि को अपने पास में रखने लगें तो परिग्रह कहलायगा ।

किसी से माँगकर उनका उपयोग करेंगे तो याचना और दीनता का दोष आवेगा ।

माँगने पर भी कोई न दे तो इससे मुनि को तिरस्कार भी संभव है।

www.JainKosh.org

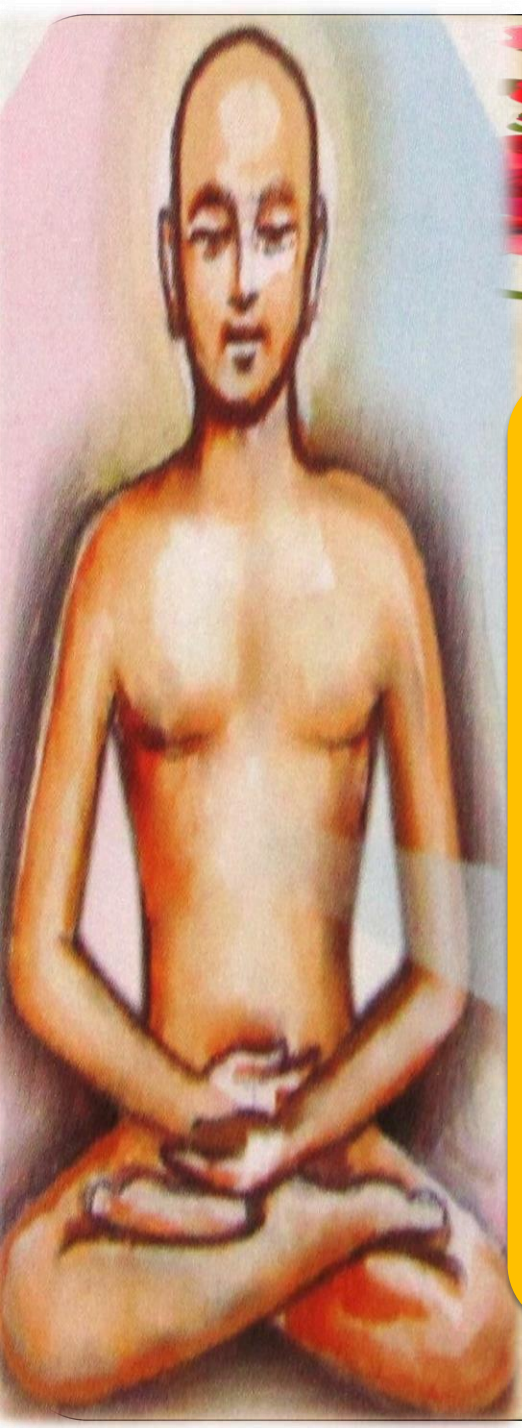

केशलोंच कितने समय बाद करना चाहिये?

उत्कृष्ट काल	मध्यम काल	जघन्य काल
२ माह	३ माह	४ माह

www.JainKosh.org

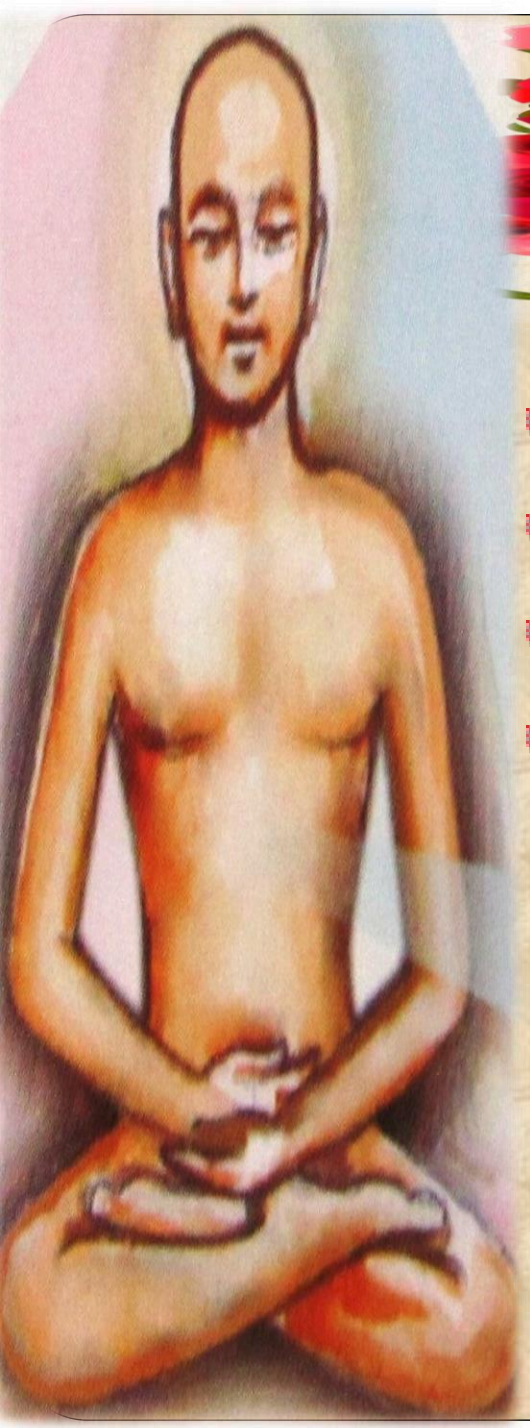

परिषह किसे कहते हैं?

- क्षुधादि वेदना के होने पर
- कर्मों की निर्जरा करने के लिए
- उसे सह लेना
- परिषह है।

www.JainKosh.org

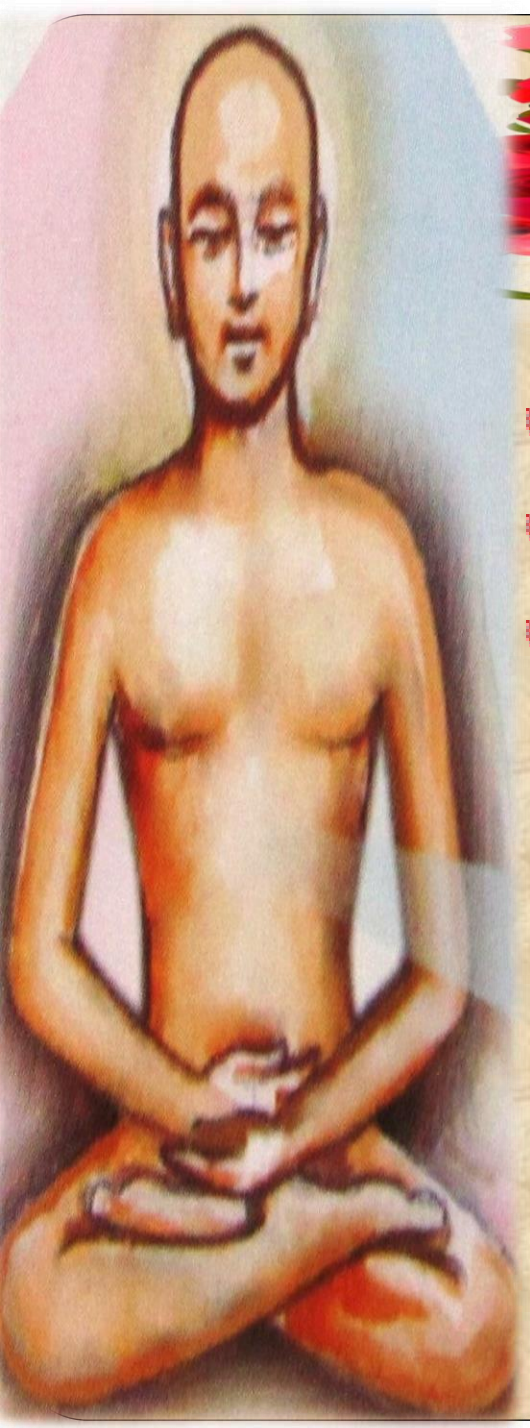

परिषहजय किसे कहते हैं?

- अत्यंत भयानक भूख आदि की वेदना को
- ज्ञानी मुनि जो शांतभाव से सहन करते हैं,
- उसे परिषहजय कहते हैं।

www.JainKosh.org

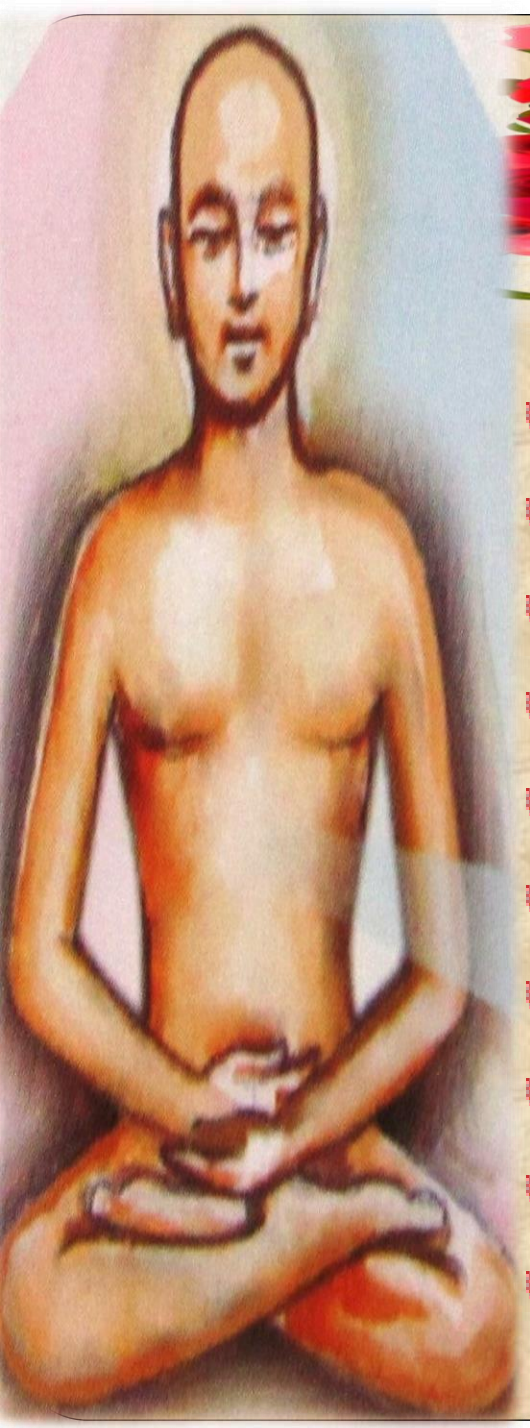

ये 22 प्रकार के परिषह हैं

- क्षुधा
- तृषा
- शीत
- उष्ण
- डाँस-मच्छर
- चर्या
- शय्या
- वध
- रोग
- तृणस्पर्श
- मल
- नग्नता
- अरति
- स्त्री
- निषद्या
- आक्रोश
- याचना
- सत्कार-पुरस्कार
- अलाभ
- अदर्शन
- प्रज्ञा
- अज्ञान

www.JainKosh.org

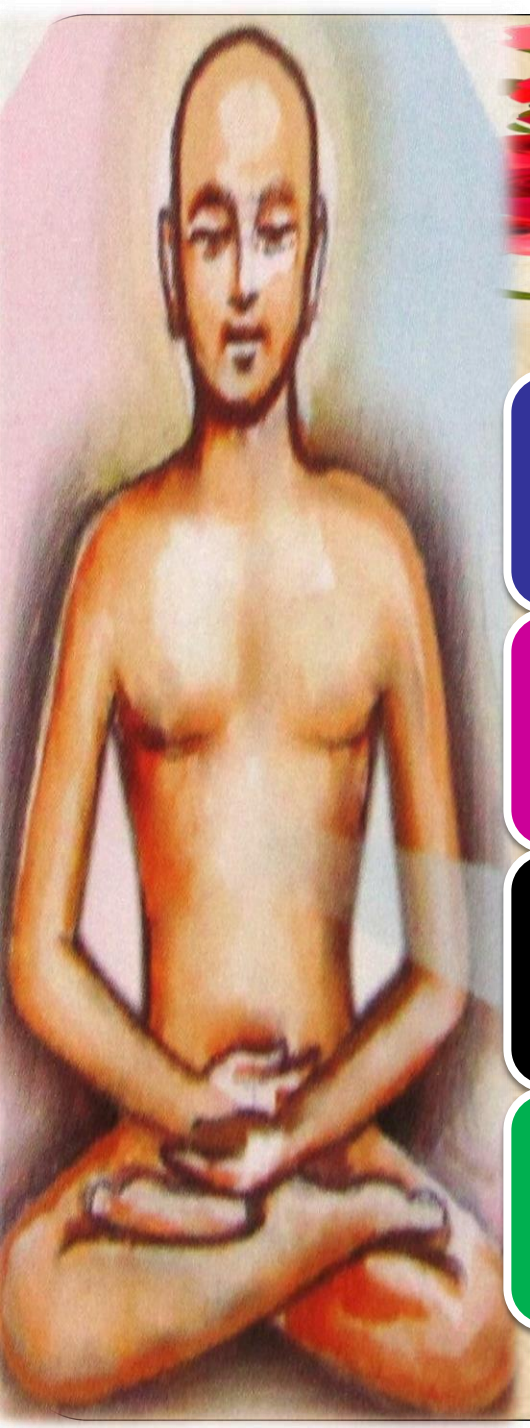

परिषह-जय किसप्रकार होता है?

तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित न हो;

दुःख के कारण मिलने से दुःखी न हो तथा सुख के कारण मिलने से सुखी न हो,

किन्तु ज्ञेयरूप से उसका ज्ञाता ही रहे;

वही सच्चा परिषहजय है ।

www.JainKosh.org

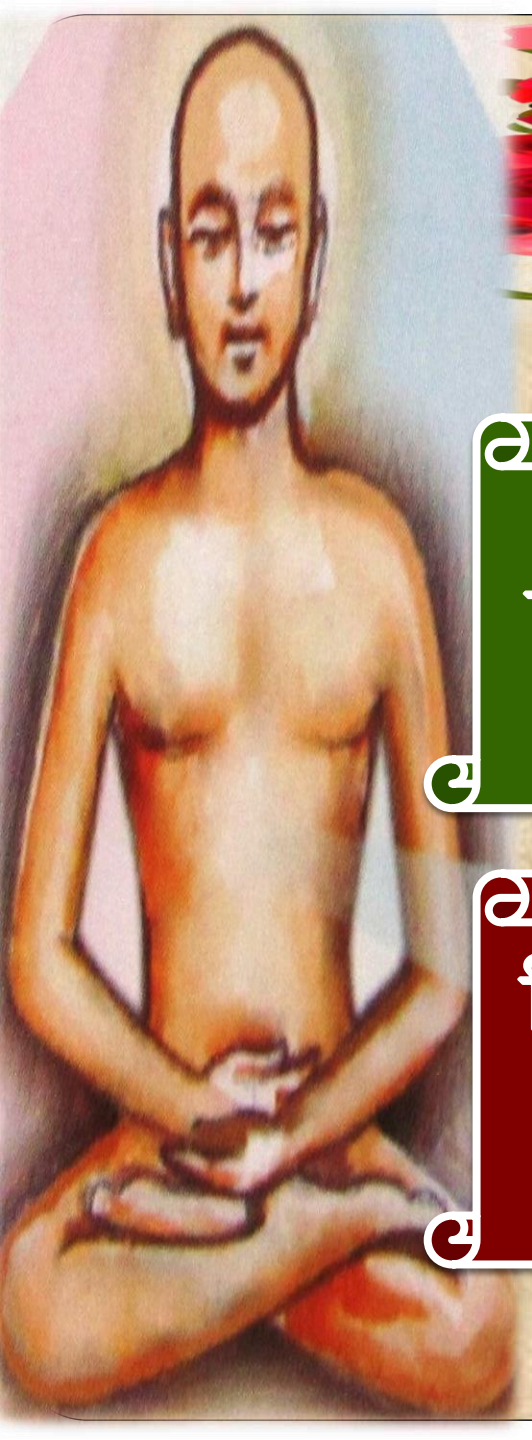

मुनिराज समता किस प्रकार धारण करते हैं?

शत्रु - मित्र में

मकान - श्मशान में

सोना - चाँदी में

निन्दक - भक्त में

उपसर्ग करने वाले - उपसर्ग हटाने वाले में

समता रखते हैं

www.JainKosh.org

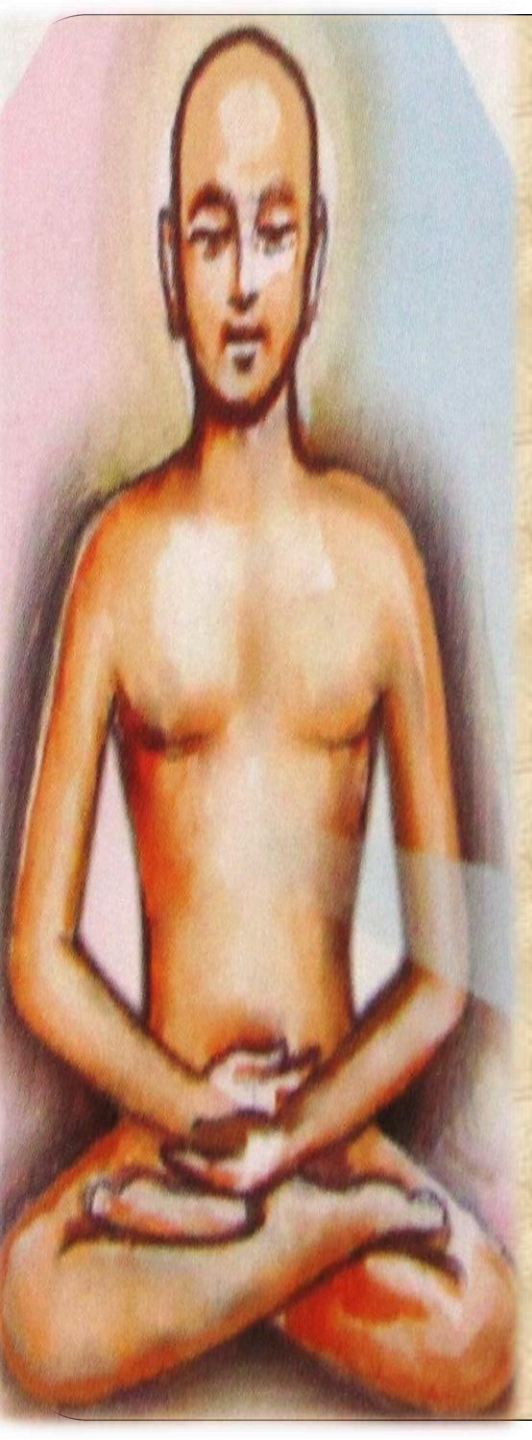

मुनिराज के उत्तर गुण

पाप	5
कषाय	4
भय, अरति, रति, जुगुप्सा	4
योग	3
मिथ्यादर्शन, प्रमाद, पिशुनत्व, अज्ञान, इन्द्रिय अनिग्रह	5
कुल	21
अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार	4, 21×4= 84
पृथ्वीकायादि	100, 84×100 = 8400
विराधना	10, 8400×10 =84000
आलोचना के दोष	10, 84000×10 = 840000
प्रायश्चित्	10, 840000×10 = 8400000

www.JainKosh.org

मुनियों के तप, धर्म, विहार तथा स्वरूपाचरणचारित्र

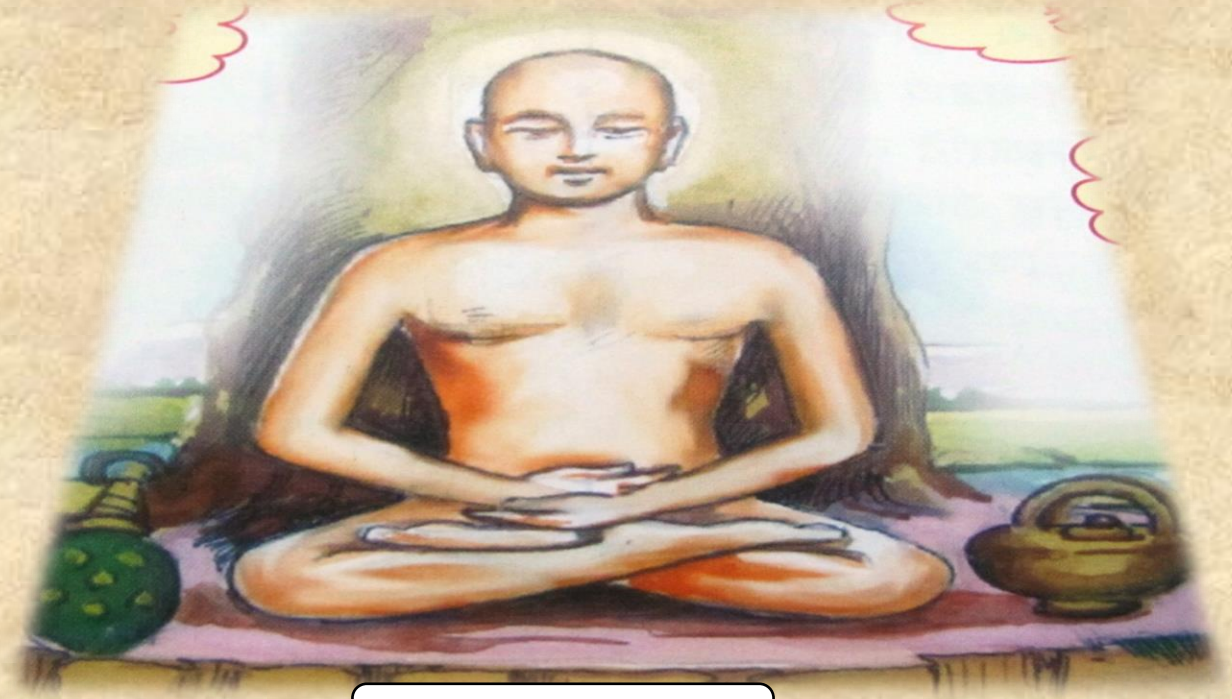

www.JainKosh.org

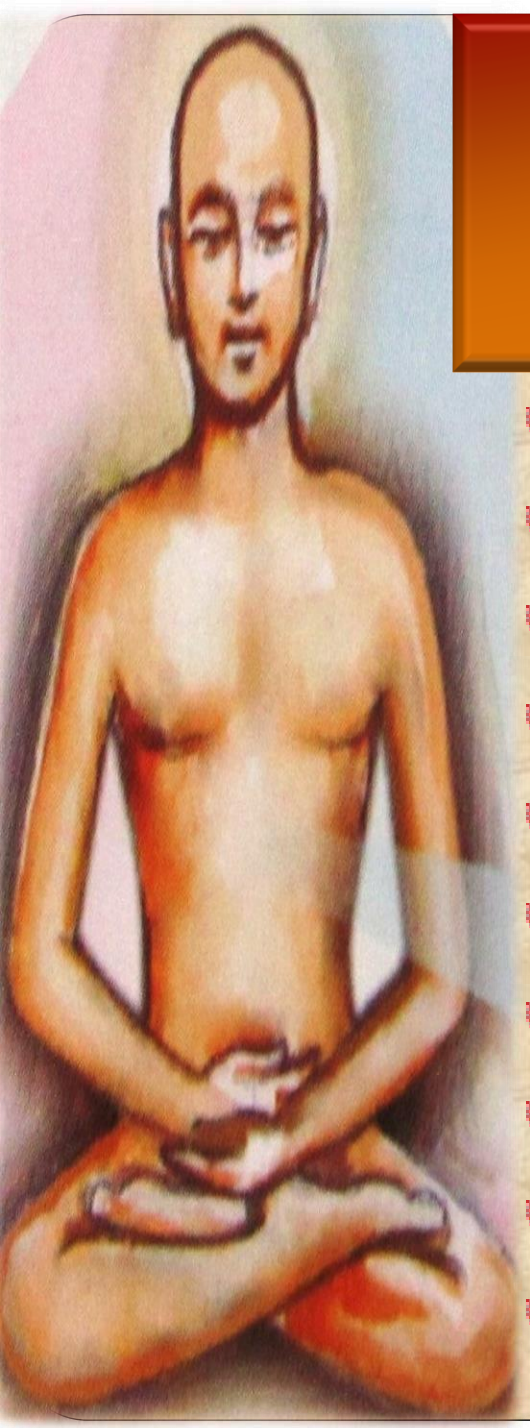

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७ ॥

- द्वादश= बारह प्रकार के तप तपैं= तप करते हैं;
- वृष= धर्म को
- धरैं= धारण करते हैं
- सेवैं= सेवन करते हैं ।
- वा= अथवा
- विचरैं= विचरते हैं
- भवसुख= सांसारिक सुखों
- नहिं चहैं= इच्छा नहीं करते ।
- निधि= ज्ञानादिक सम्पत्ति
- प्रकटै= प्रकट होती

www.JainKosh.org

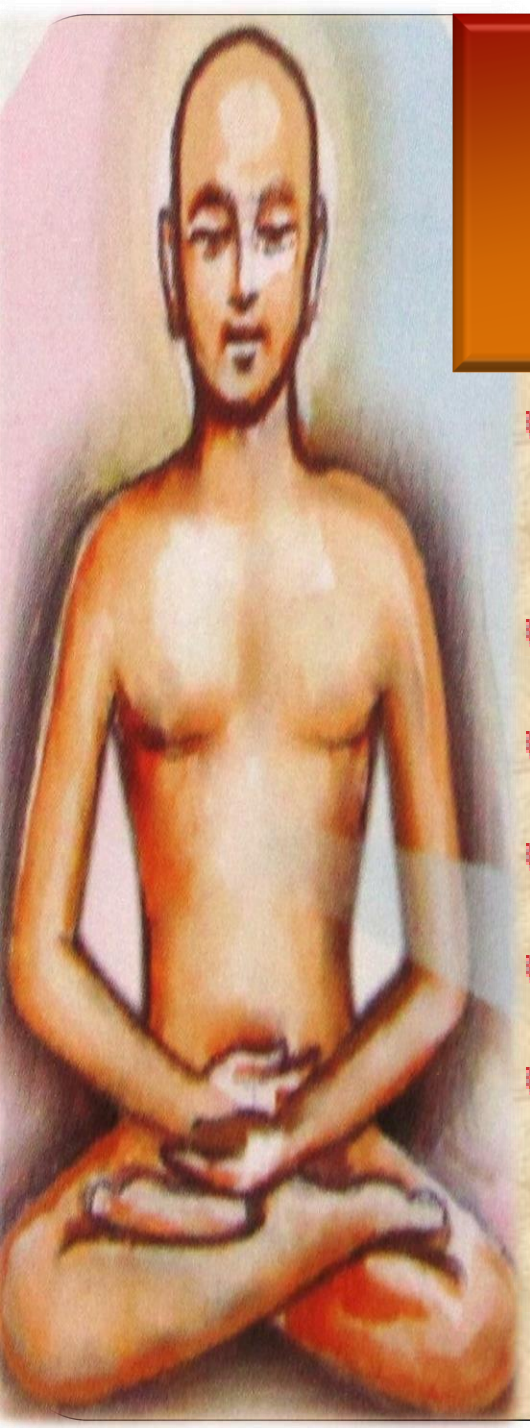

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥

- मुनिराज हमेशा १२ प्रकार के तपों को तपते हैं, १० प्रकर के धर्मोंको धारण करते हैं और रत्नत्रय को हमेशा सेवते हैं।
- वे मुनियों के संघ में अथवा अकेले विहार करते हैं;
- किसी भी समय सांसारिक सुख की इच्छा नहीं करते ।
- इसप्रकार सकलचारित्र का स्वरूप कहा ।
- अब स्वरूपाचरणचारित्र का वर्णन करेंगे, उसे सुनो
- जिसके प्रकट होने से आत्मा की ज्ञानादिक सम्पत्ति प्रगट होती है और परपदार्थ की ओर की सर्वप्रकार की प्रवृत्ति दूर होती है

www.JainKosh.org

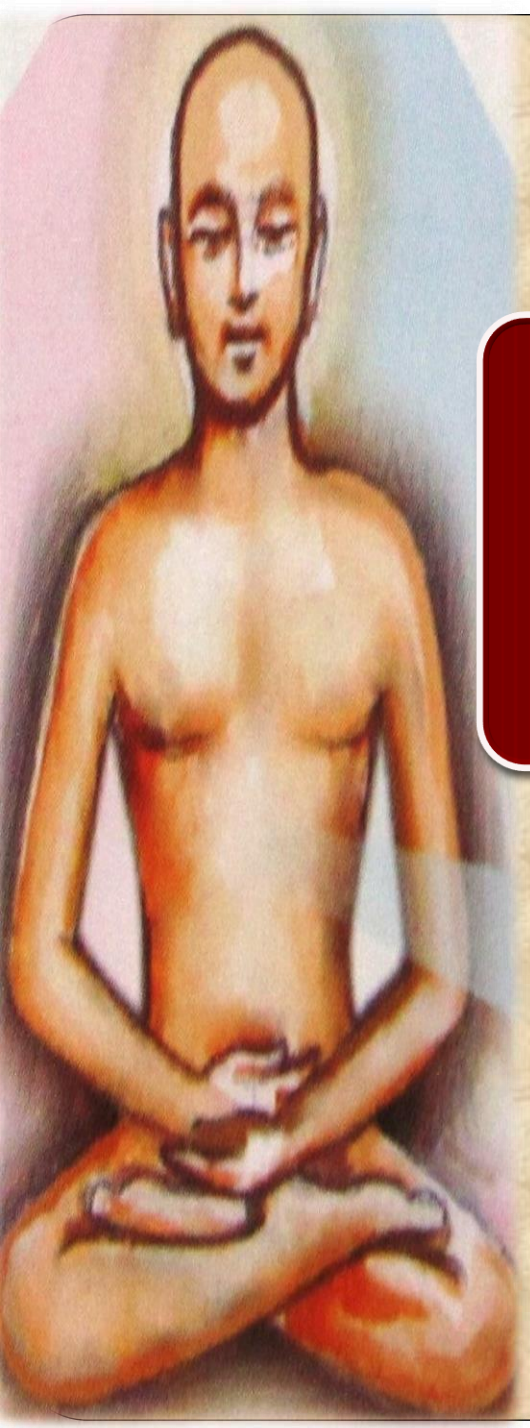

तप

निश्चय तप

मुनि का शुद्धात्मस्वरूप में लीन रहकर प्रतपना-प्रतापवन्त वर्तना ।

व्यवहार तप

हठरहित बारह प्रकार के तप के शुभ विकल्प

www.JainKosh.org

www.JainKosh.

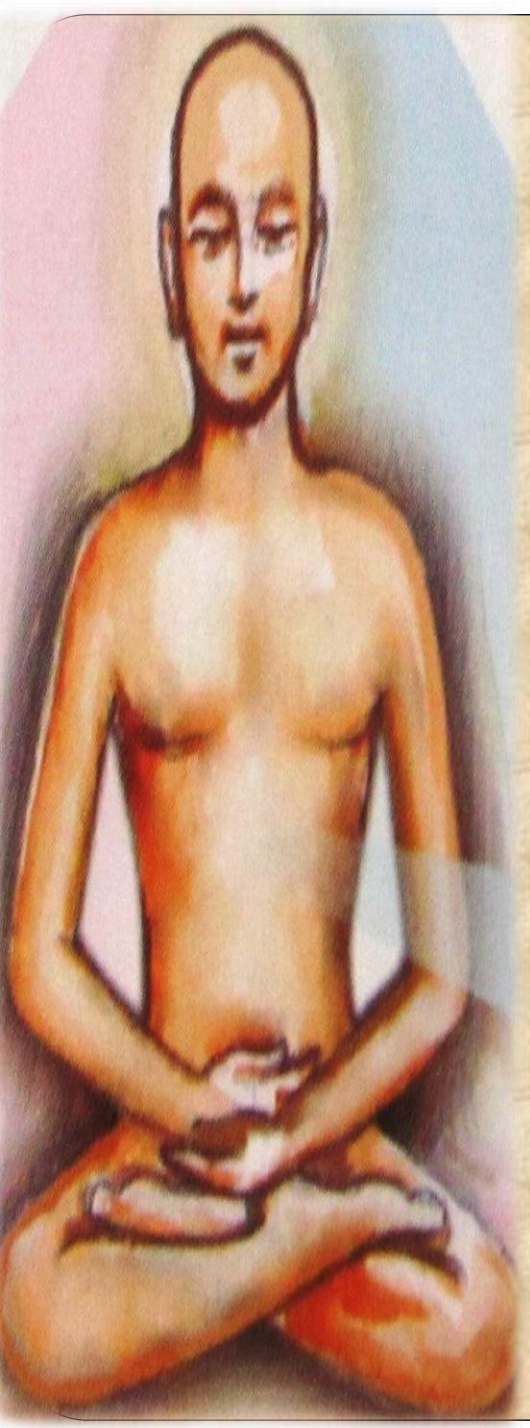

मात्र बाह्य तप करने से निर्जरा नहीं होती है ।

शुद्धोपयोग निर्जरा का कारण है, इसलिये उपचार से तप को भी निर्जरा का कारण कहा है ।

यदि बाह्य दुःख सहन करना ही निर्जरा का कारण हो, तब तो पशु आदि भी क्षुधा-तृषा सहन करते हैं

www.JainKosh.org

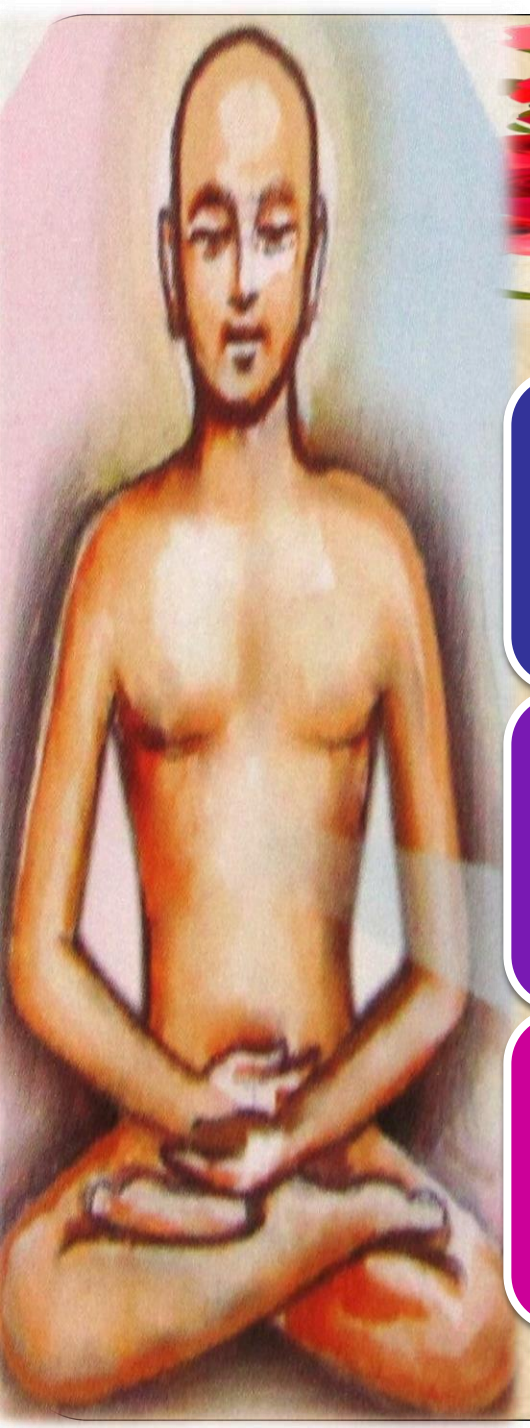

पशु तो पराधीनतापूर्वक सहन करते हैं । जो स्वाधीनरूप से धर्मबुद्धिपूर्वक उपवासादि तप करे, उसे तो निर्जरा होती है न?

धर्मबुद्धि से बाह्य उपवासादि करे तो निर्जरा का मुख्य कारण उपवासादि सिद्ध हो,

किन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता;

क्योंकि परिणाम दुष्ट होने पर उपवासादि करने से भी, निर्जरा कैसे सम्भव हो सकती है?

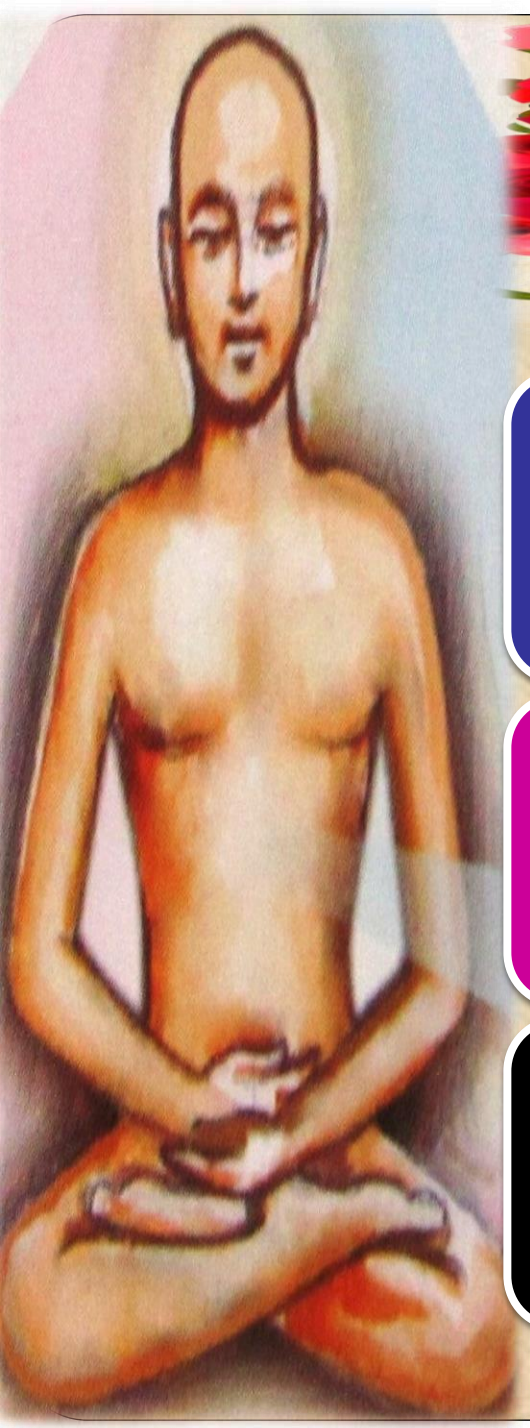

यदि ऐसा है तो अनशनादि को तप की संज्ञा किसप्रकार कही गई?

उन्हें बाह्य-तप कहा है;

बाह्य का अर्थ यह है कि बाह्य में दूसरों को दिखाई दे कि यह तपस्वी है;

किन्तु स्वयं तो जैसे अंतरंग-परिणाम होंगे, वैसा ही फल प्राप्त करेगा

www.JainKosh.org

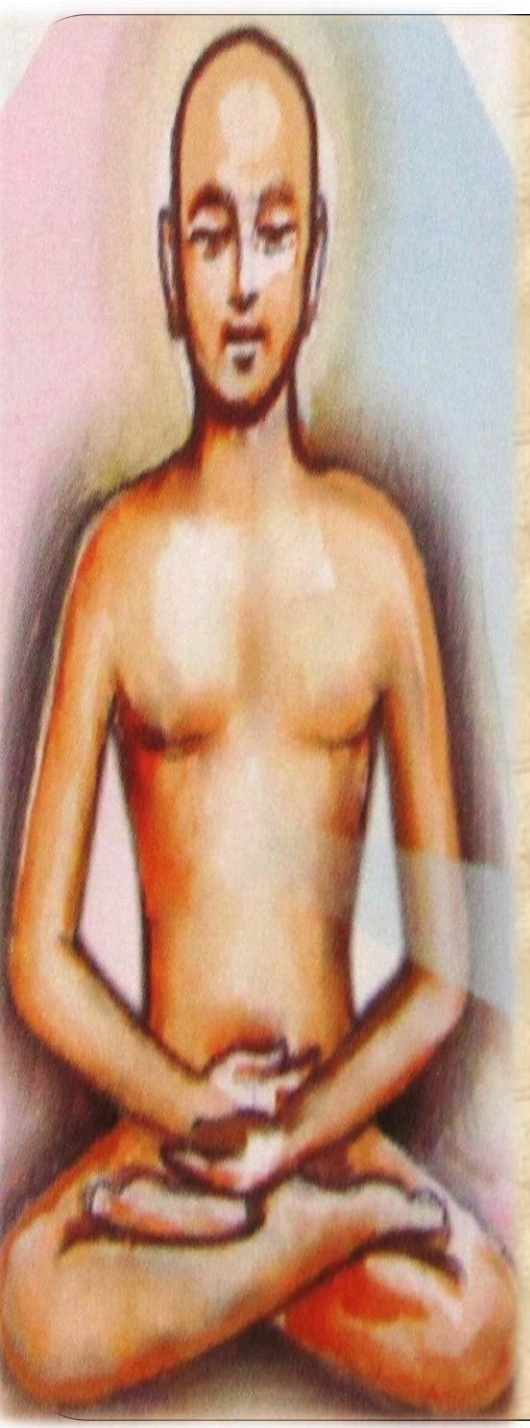

धर्म

जो जीवों को संसार के दुखों से निकालकर मोक्षरुपी उत्तम सुख में धरे

www.JainKosh.org

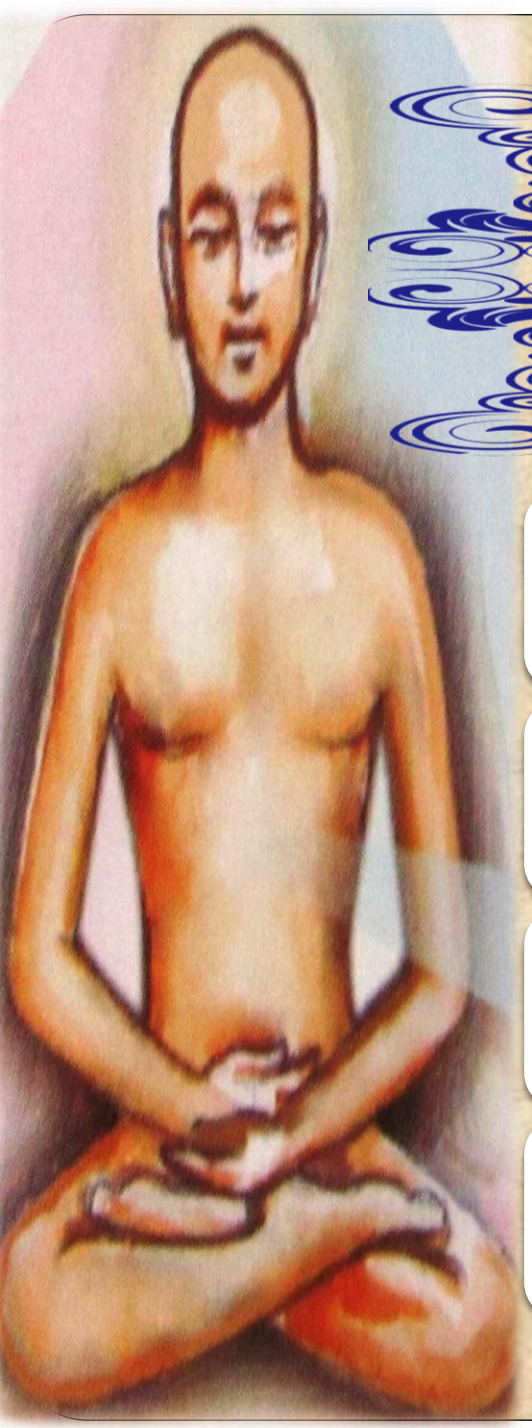

क्रोधादिक का त्याग और उत्तम क्षमादि धर्म कब होता है?

पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित होने पर क्रोधादि होते हैं,

किन्तु जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो,

तब स्वयं क्रोधादिक की उत्पत्ति नहीं होती और

तभी सच्चे क्षमादि धर्म होते हैं ।

www.JainKosh.org

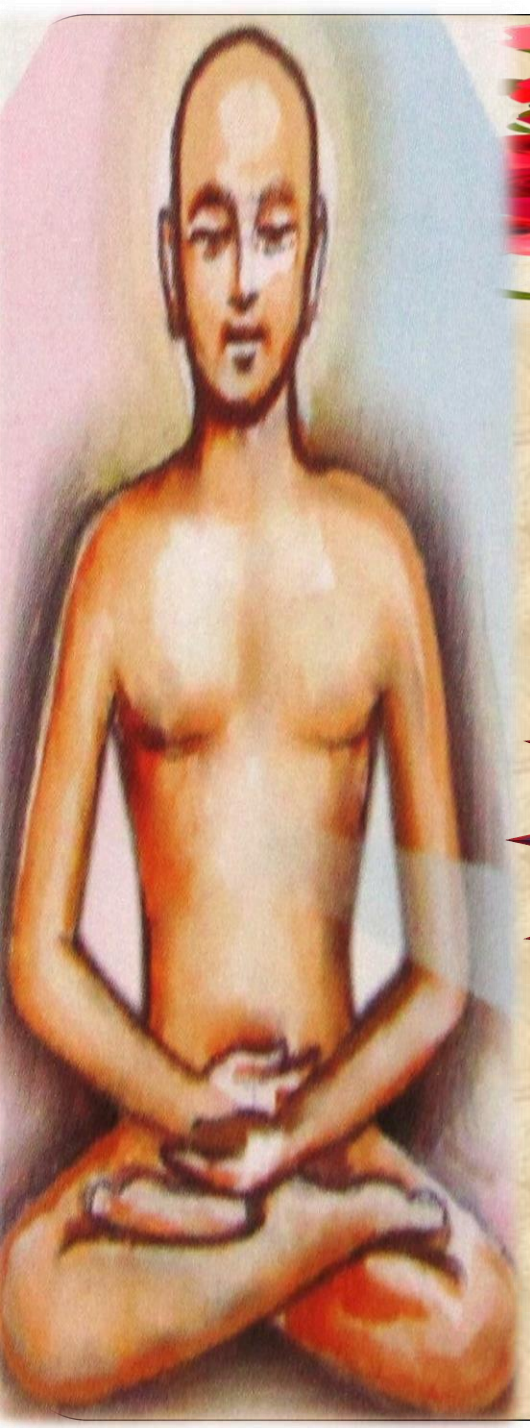

स्वरुपाचरण चारित्र का फल क्या होता है?

अपने आत्मा की ज्ञानादिक सम्पत्ति प्रगट हो जाती है

www.JainKosh.org

स्वरूपाचरणचारित्र का वर्णन

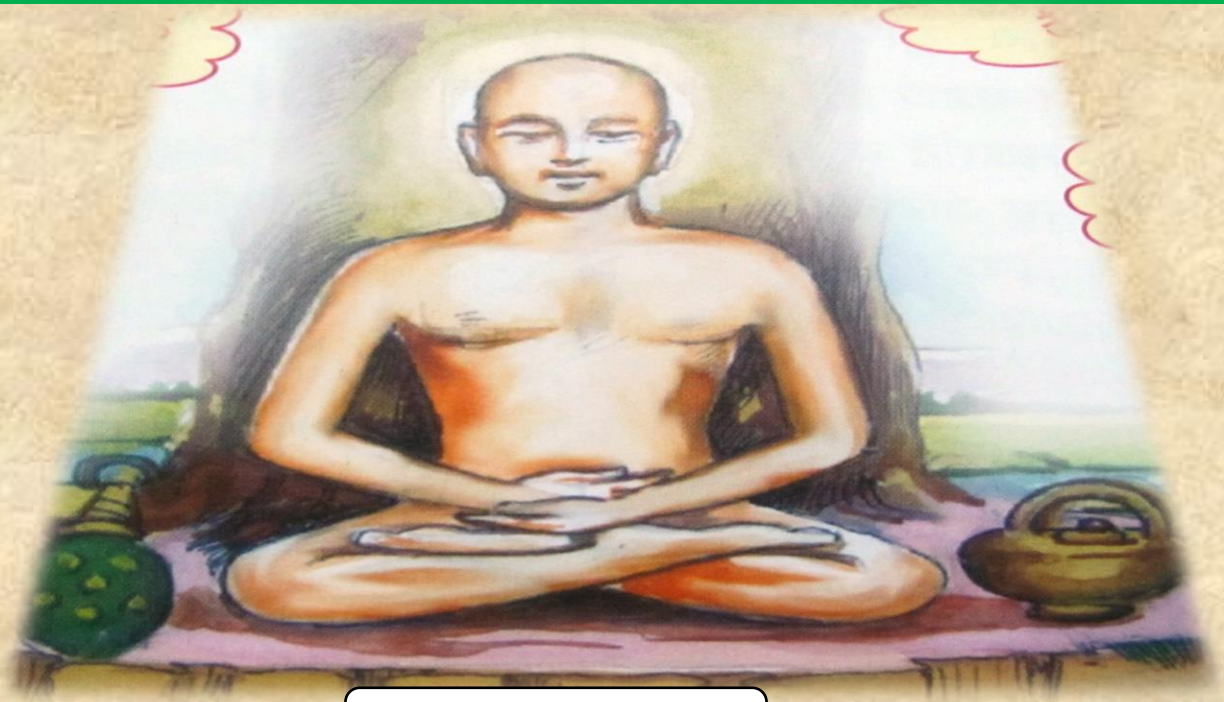

www.JainKosh.org

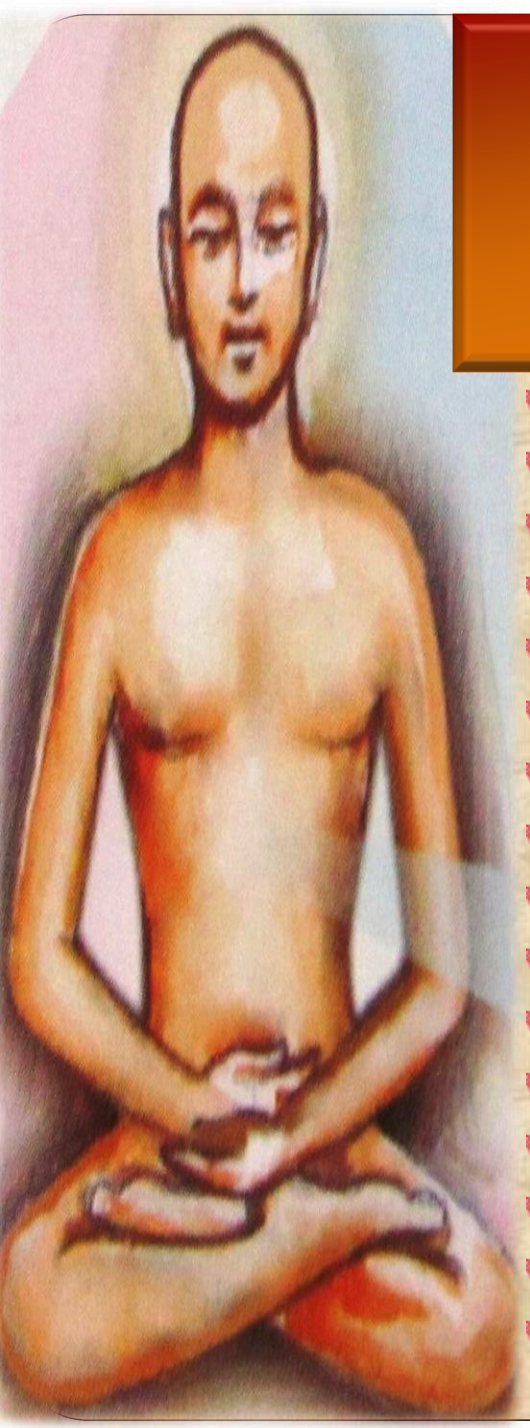

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया ॥
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥८ ॥

- जिन= जो वीतरागी मुनिराज
- पैनी= तीक्ष्ण
- सुबुधि= भेदविज्ञानरूपी
- निजभाव को= आत्मा के वास्तविक स्वरूप को
- वरणादि= वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्शरूप
- अरु= और
- रागादितैं= राग-द्वेषादिरूप भावकर्म से
- न्यारा किया= भिन्न करके
- निजमाहिं= अपने आत्मा में
- निज के हेतु= अपने लिए
- निजकर= अपने द्वारा
- आपको= आत्मा को
- आपै= स्वयं अपने से
- गह्यो= ग्रहण करते हैं;
- ज्ञान मँझार= ज्ञान में
- कछु भेद न रह्यो= किंचित्मात्र भेद नहीं रहता

www.JainKosh.org

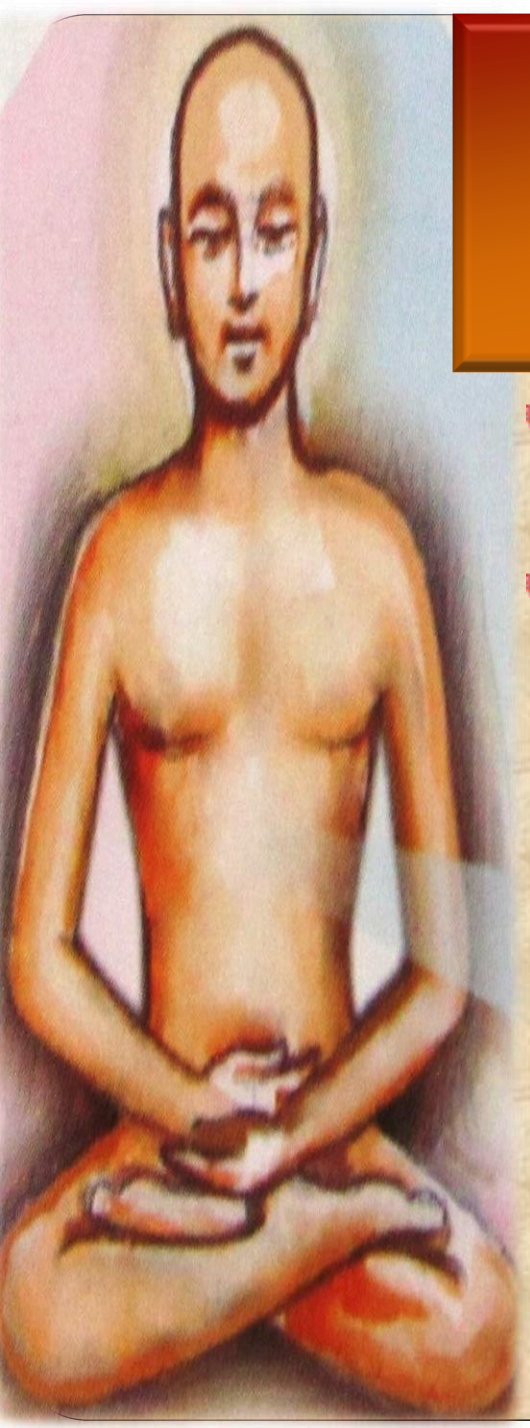

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भाव को न्यारा किया ॥
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥८ ॥

- जिसप्रकार कोई पुरुष तीक्ष्ण छैनी द्वारा पत्थर आदि के दो भाग पृथक्-पृथक् कर देता है,
- उसीप्रकार स्वरूपाचरणचारित्र का आचरण करते समय वीतरागी मुनि अपने अन्तरंग में भेदविज्ञानरूपी छैनी द्वारा अपने आत्मा के स्वरूप को -
  - शरीरादिक नोकर्म से,
  - द्रव्यकर्म से तथा
  - राग-द्वेषादिरूप भावकर्मों से भिन्न करके
  - अपने आत्मा में,
  - आत्मा के लिए,
  - आत्मा को स्वयं जानते हैं;
  - तब उनके स्वानुभव में गुण, गुणी तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ऐसे कोई भेद नहीं रहते

www.JainKosh.org

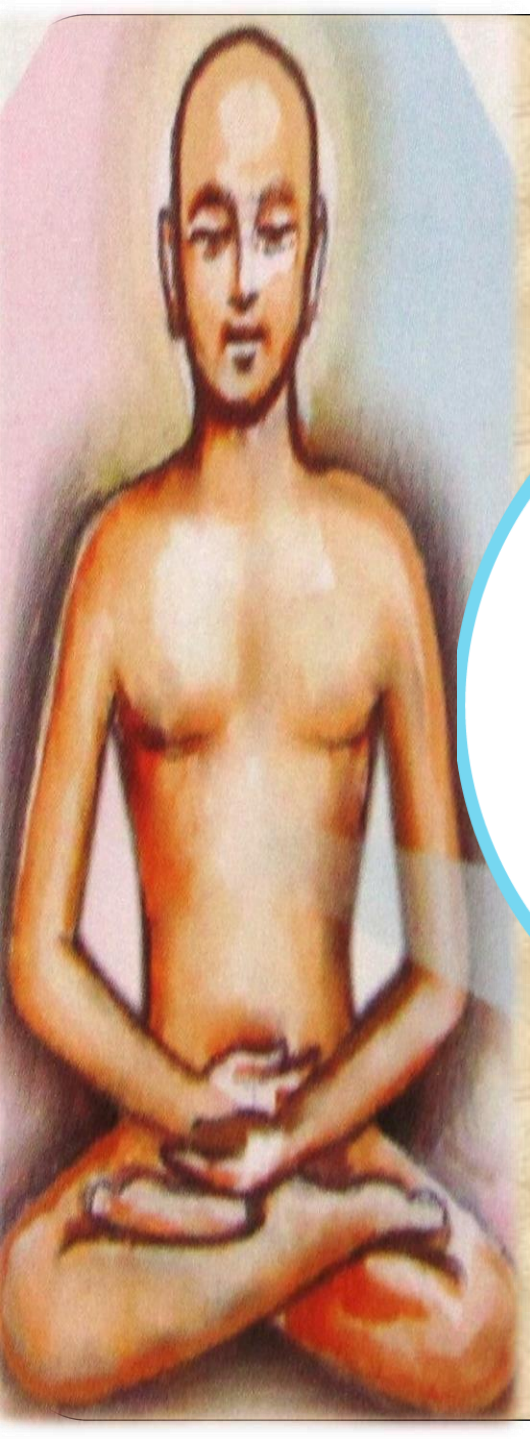

स्वरुपाचरण चारित्र किसके और कैसे प्रगट होता है?

वीतरागी मुनि को

जब वे सम्यग्ज्ञान रूपी छैनी द्वारा

आत्म स्वभाव को

रागादि और वर्णादि से

भिन्न कर लेते हैं

www.JainKosh.org

भेदविज्ञानरूपी छैनी

भेद-विज्ञान अर्थात् *सम्यग्ज्ञान* द्वारा

आत्मा को रागादि और वर्णादि से भिन्न जानना और अनुभव करना

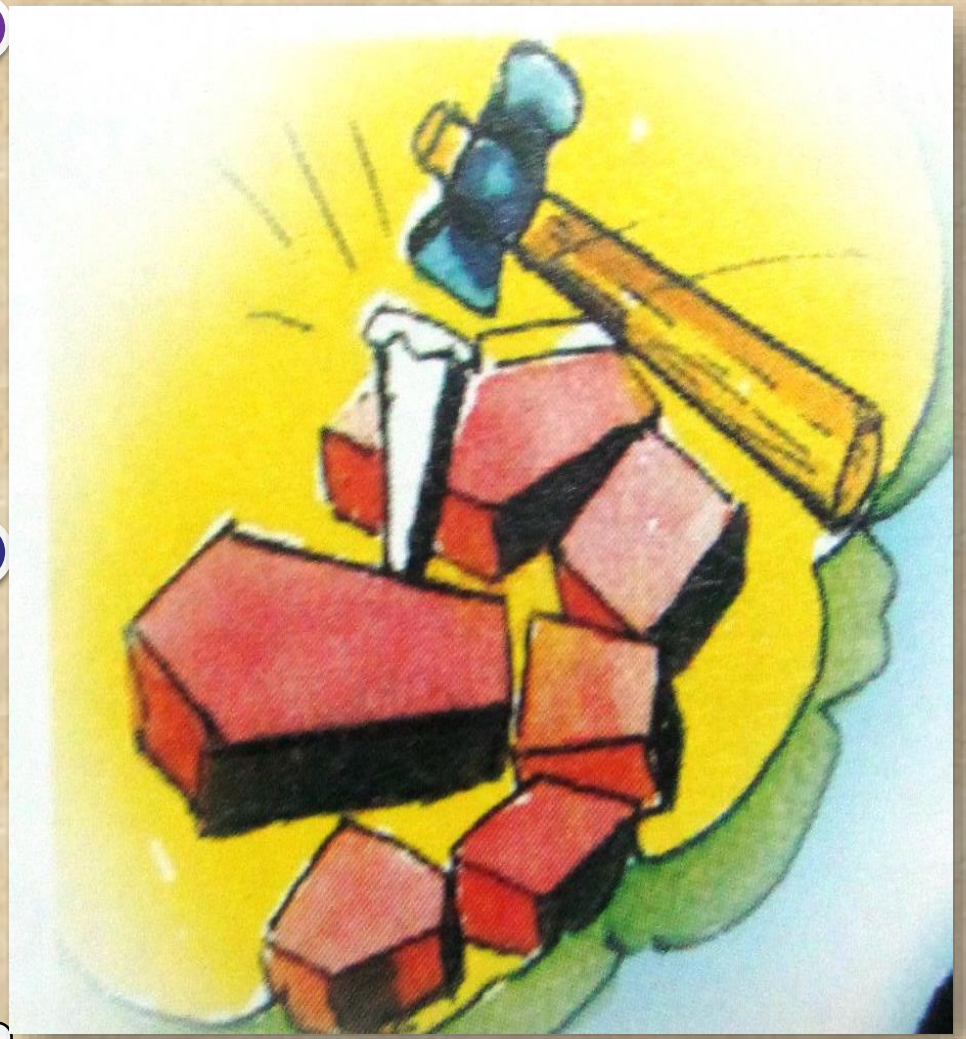

www.JainKosh.org

किसका भेद नहीं रहता है?

गुणी	• जिसमें गुण पाये जाते हैं वह पदार्थ
गुण	• पदार्थ में पाये जाते हैं, जिससे उसकी पहचान होती है
ज्ञाता	• जो जानने वाला होता है
ज्ञेय	• जिसको ज्ञाता जान सकता है
ज्ञान	• जिसके द्वारा जाना जाता है ऐसा गुण

स्वरूपाचरणचारित्र का वर्णन

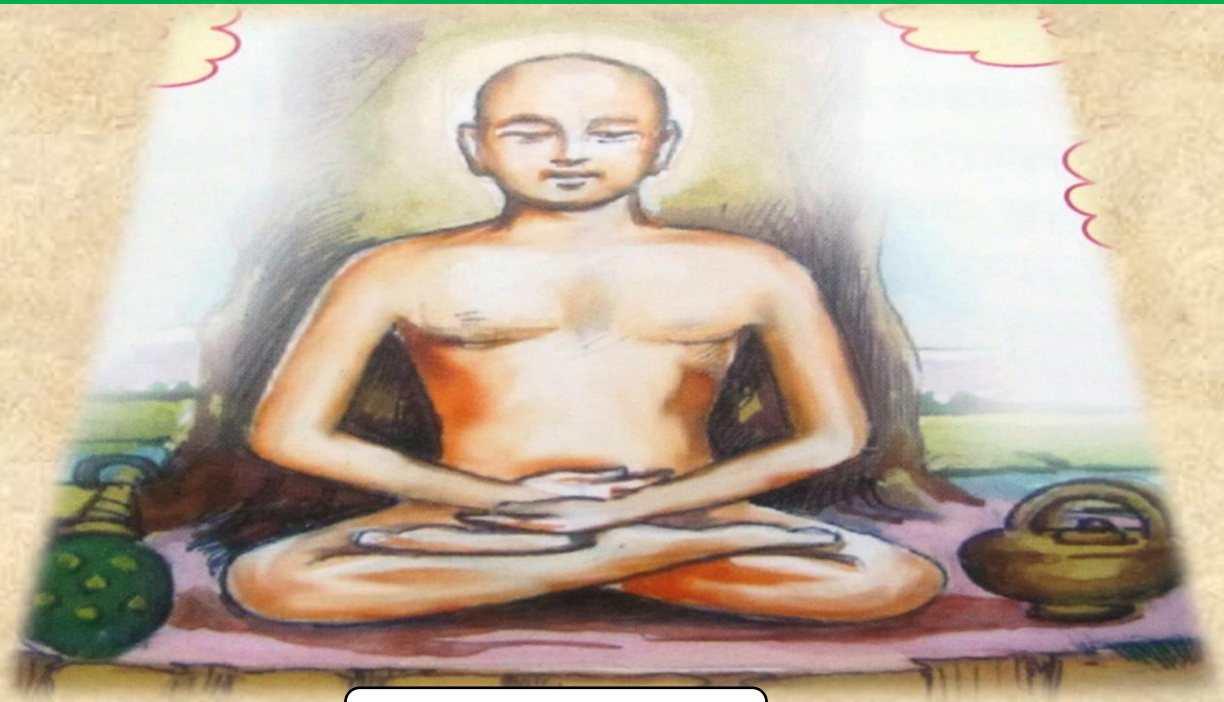

www.JainKosh.org

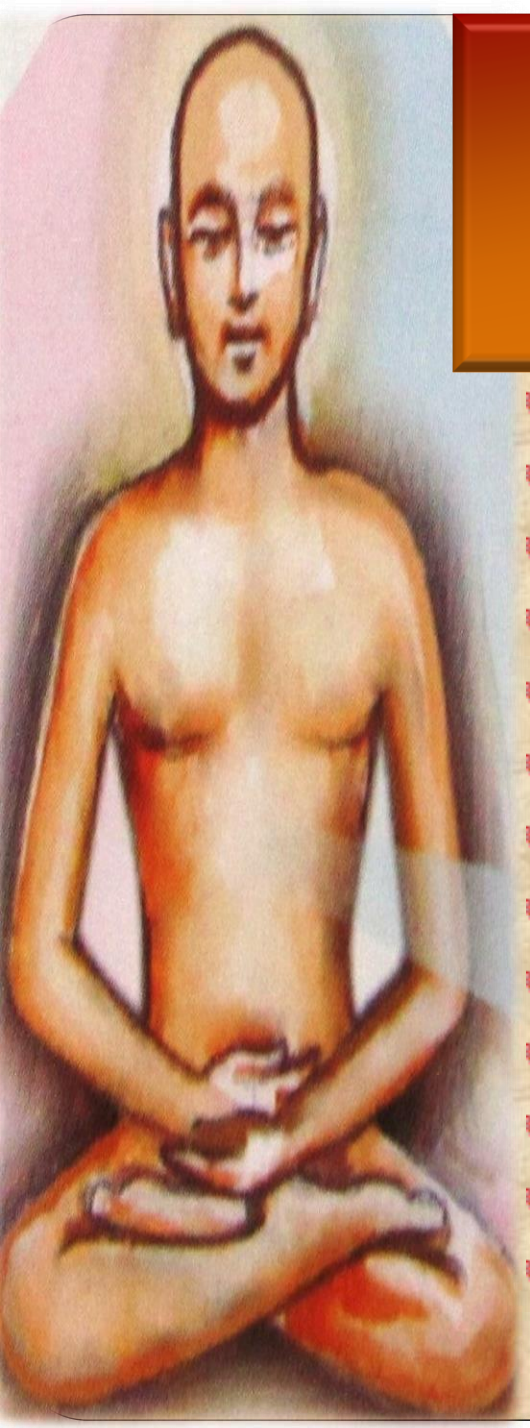

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा ।
प्रकटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९ ॥

- जहँ= जिस स्वरूपाचरणचारित्र में
- वच= वचन का
- चिद्भाव= आत्मा का स्वभाव ही
- चिदेश= आत्मा ही
- करता= कर्ता,
- किरिया= क्रिया होता है
- अभिन्न= भेदरहित एक,
- अखिन्न= अखण्ड
- दशा= पर्याय
- दृग-ज्ञान-व्रत= सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र
- तीनधा= ये तीनों
- एकै= एकरूप
- लसा= शोभायमान होते हैं ।

www.JainKosh.org

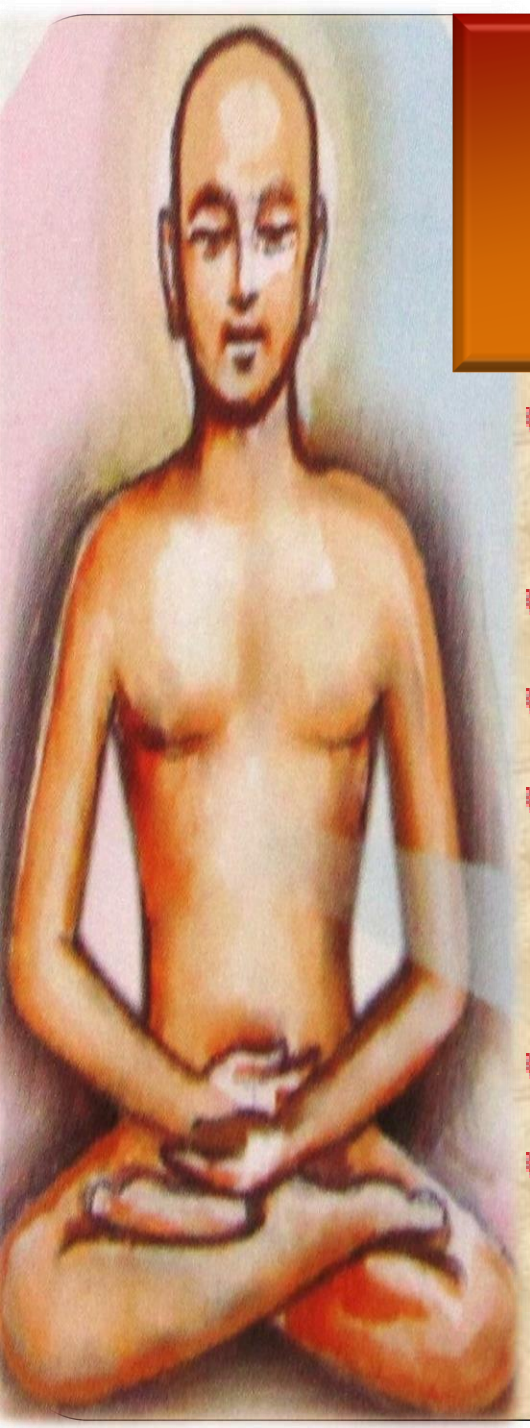

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा ।
प्रकटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९ ॥

- वीतरागी मुनिराज स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं; तब
- ध्यान, ध्याता और ध्येय ऐसे भेद नहीं रहते,
- वचन का विकल्प भी नहीं होता ।
- वहाँ आत्मा ही कर्म, आत्मा ही कर्ता और आत्मा का भाव, वह ही क्रिया होती है अर्थात् कर्ता, कर्म और क्रिया वे तीनों बिलकुल अखण्ड, अभिन्न हो जाते हैं
- और शुद्धोपयोग की अचल दशा प्रकट होती है
- जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक साथ-एकरूप होकर प्रकाशमान होते हैं ॥

www.JainKosh.org

स्वरुपाचरण चारित्र में क्या होता है?

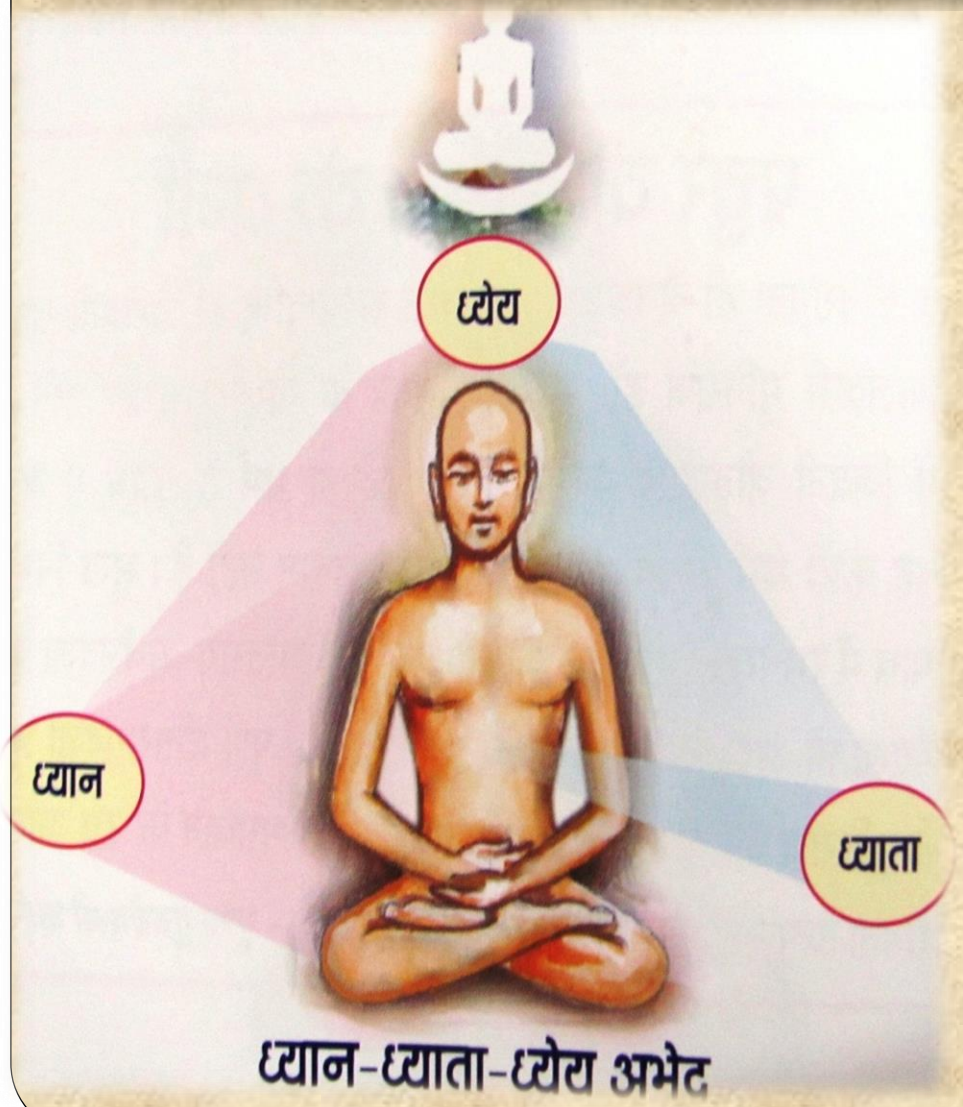

ध्यान, ध्याता, ध्येय का भेद नहीं रहता है

वचन का भेद नहीं रहता

आत्मा का स्वभाव ही कर्ता, कर्म और चेतन ही क्रिया हो जाती है

निश्चल आत्मलीनता प्रगट हो जाती है

www.JainKosh.org

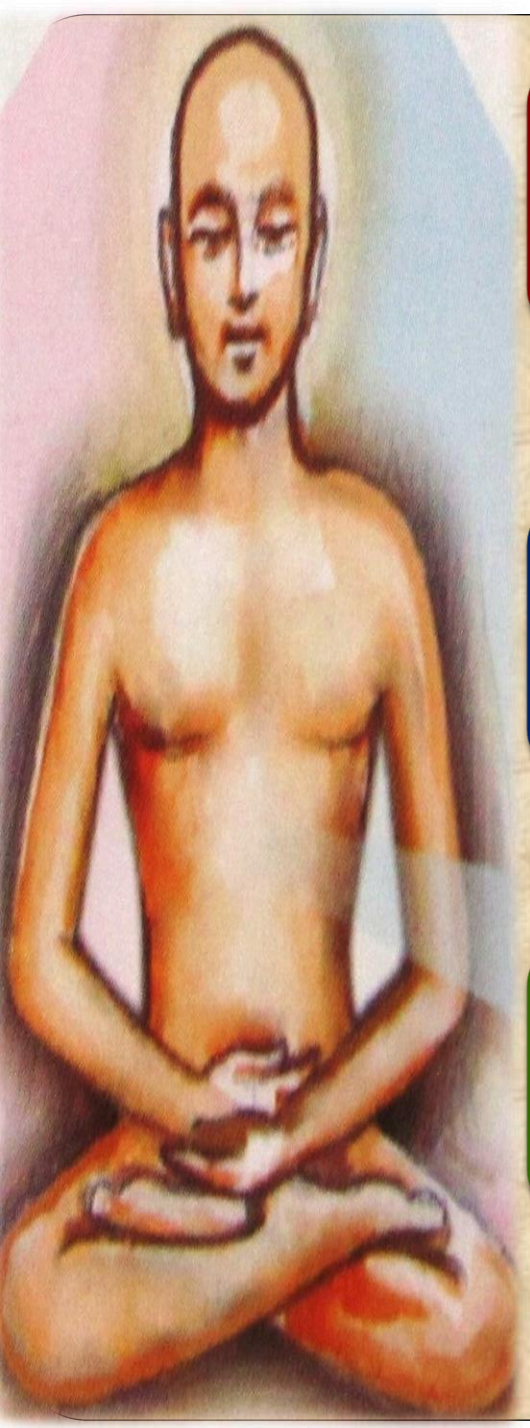

ध्यान

- अपने चित्त को एकाग्र करके एक ही विषय में लगाना

ध्याता

- ध्यान करने वाला व्यक्ति

ध्येय

- जिसका ध्यान किया जाता है

www.JainKosh.org

ध्यान

आर्त्तध्यान	रौद्रध्यान	धर्मध्यान	शुक्लध्यान
अनिष्ट संयोगज	हिंसानंदी	आज्ञा विचय	पृथक्क वितर्क विचार
इष्टवियोगज	मृषानंदी	अपाय विचय	एकत्व वितर्क अविचार
वेदना	चौर्यानंदी	विपाक विचय	सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति
निदानज	विषयसंरक्षणानंदी	संस्थान विचय	व्युपरत क्रिया निवृत्ति

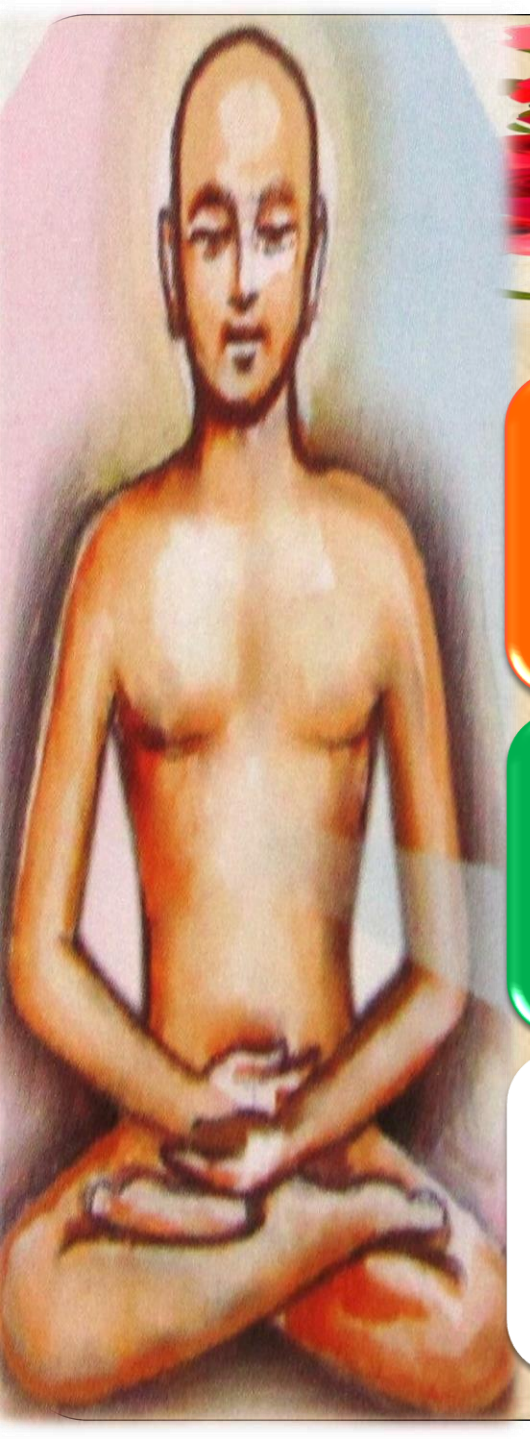

ध्यान का फल क्या है?

आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान	•संसार का कारण
धर्मध्यान	•परम्परा से मोक्ष का कारण
शुक्लध्यान	•साक्षात् मोक्ष का कारण है

www.JainKosh.org

स्वरूपाचरणचारित्र का लक्षण और निर्विकल्प ध्यान

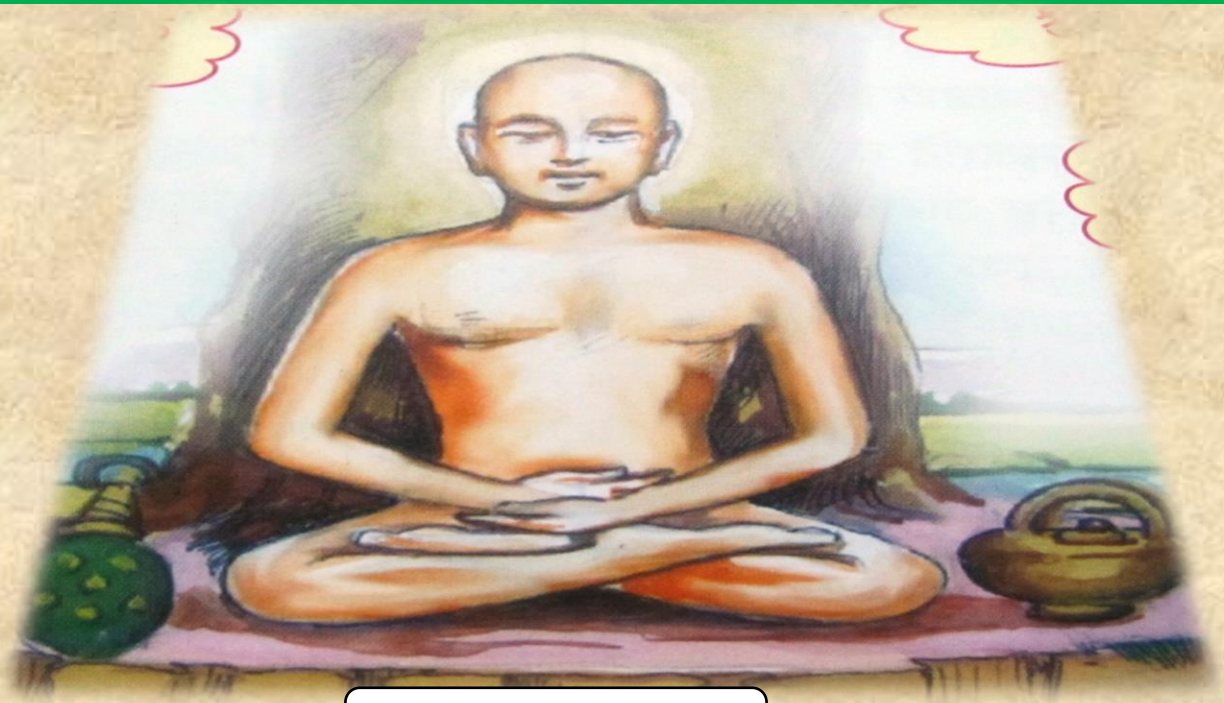

www.JainKosh.org

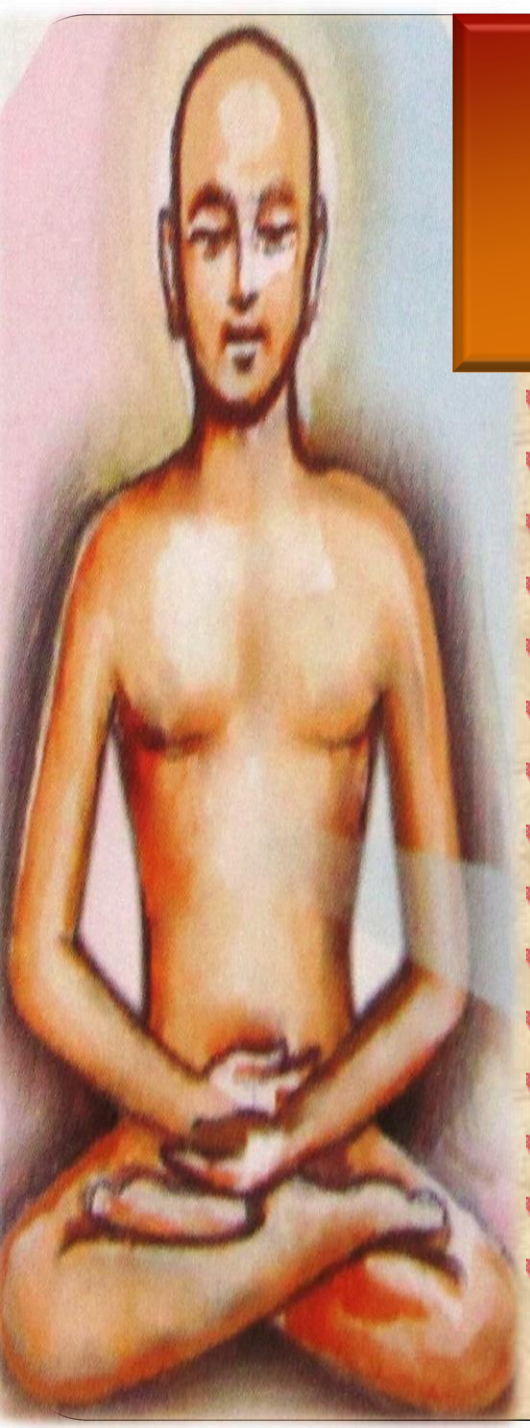

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१० ॥

- परमाण= प्रमाण,
- उद्योत= प्रकट
- न दिखै= दिखाई नहीं देता
- मो विखै= मेरे स्वरूप में
- आन= अन्य राग-द्वेषादि
- तसु= उसके
- फलनितैं= फलों के
- अबाधक= विकल्परहित
- चित् पिंड= ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप
- चंड= निर्मल तथा ऐश्वर्यवान
- अखंड= अखंड
- सुगुण करंड= सुगुणों का भंडार
- पुनि= और
- कलनितैं= अशुद्धता से
- च्युत= रहित हूँ

www.JainKosh.org

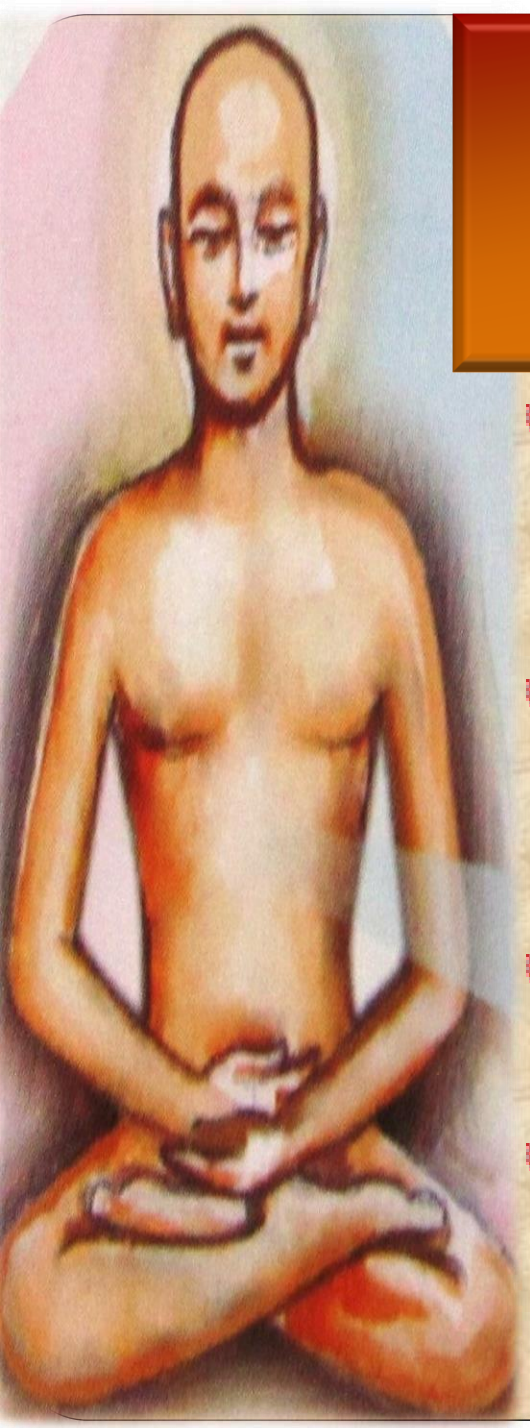

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१० ॥

- इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनियों के आत्मानुभव में प्रमाण, नय और निक्षेप का विकल्प तो उठता ही नहीं, किन्तु गुण-गुणी का भेद भी नहीं होता ऐसा ध्यान होता है ।
- प्रथम ऐसा ध्यान होता है कि मैं अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप हूँ; मुझमें कोई रागादिक भाव नहीं हैं;
- मैं ही साध्य हूँ, मैं ही साधक हूँ और कर्म तथा कर्मफल से पृथक् हूँ ।
- मैं ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप निर्मल ऐश्वर्यवान तथा अखण्ड, सहज शुद्ध गुणों का भण्डार और पुण्य-पाप से रहित हूँ ।

www.JainKosh.org

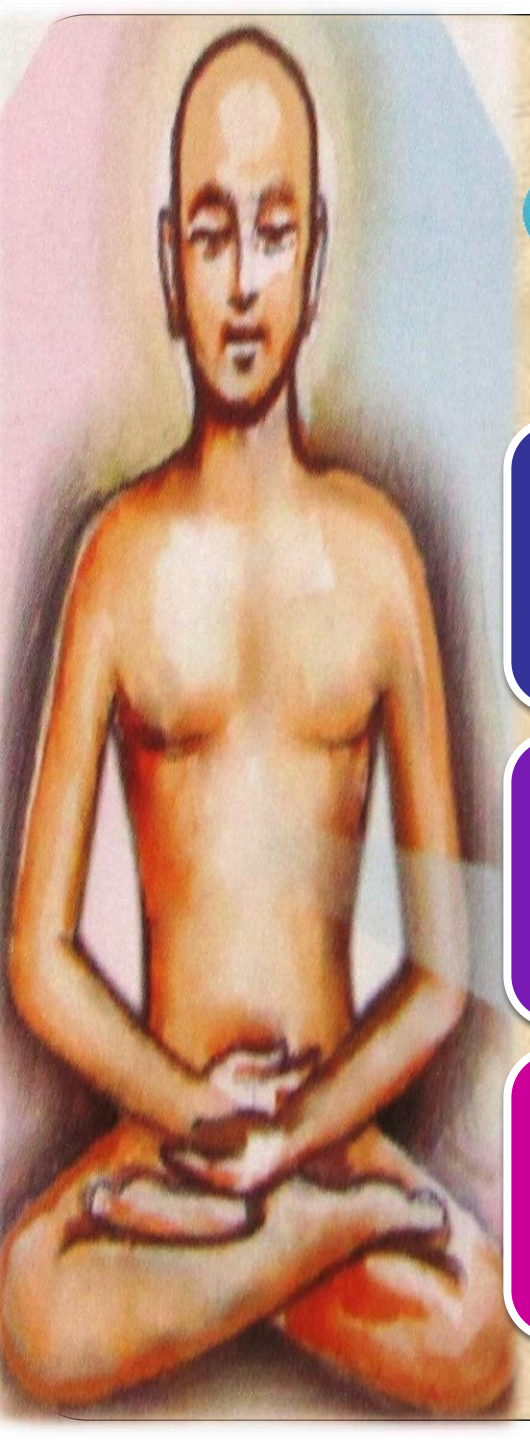

स्वरूपाचरण चारित्र

सर्व प्रकार के विकल्पों से रहित

निर्विकल्प आत्मस्थिरता को

स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं ।

www.JainKosh.org

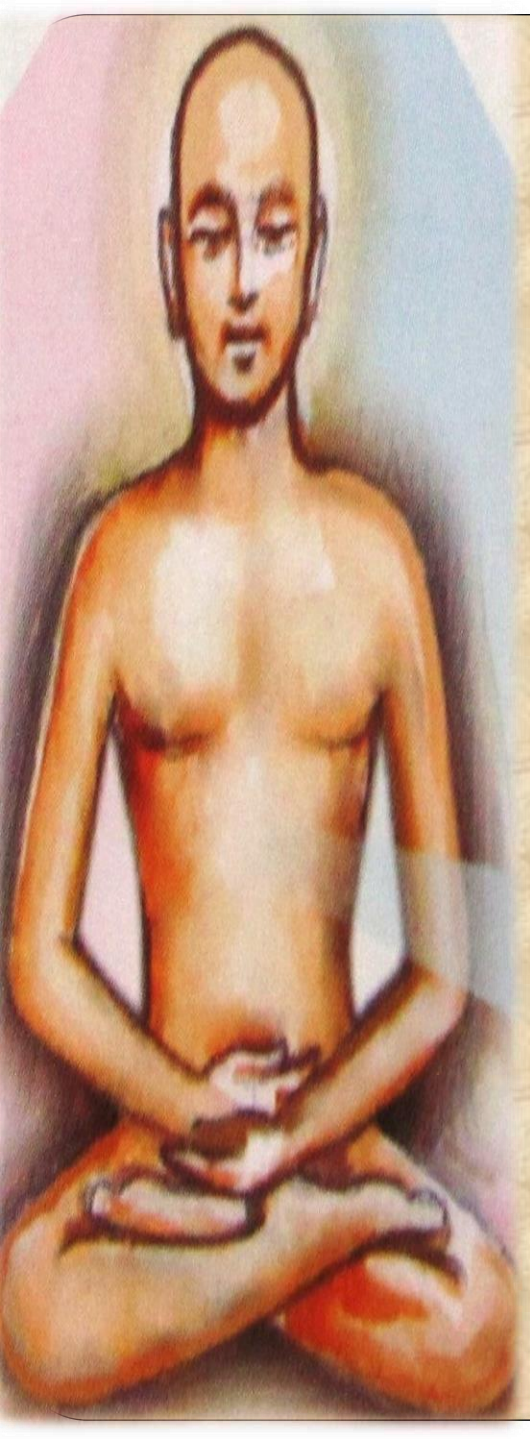

प्रमाण किसे कहते हैं?

वस्तु के सर्वांश को जाननेवाला ज्ञान प्रमाण होता है ।

www.JainKosh.org

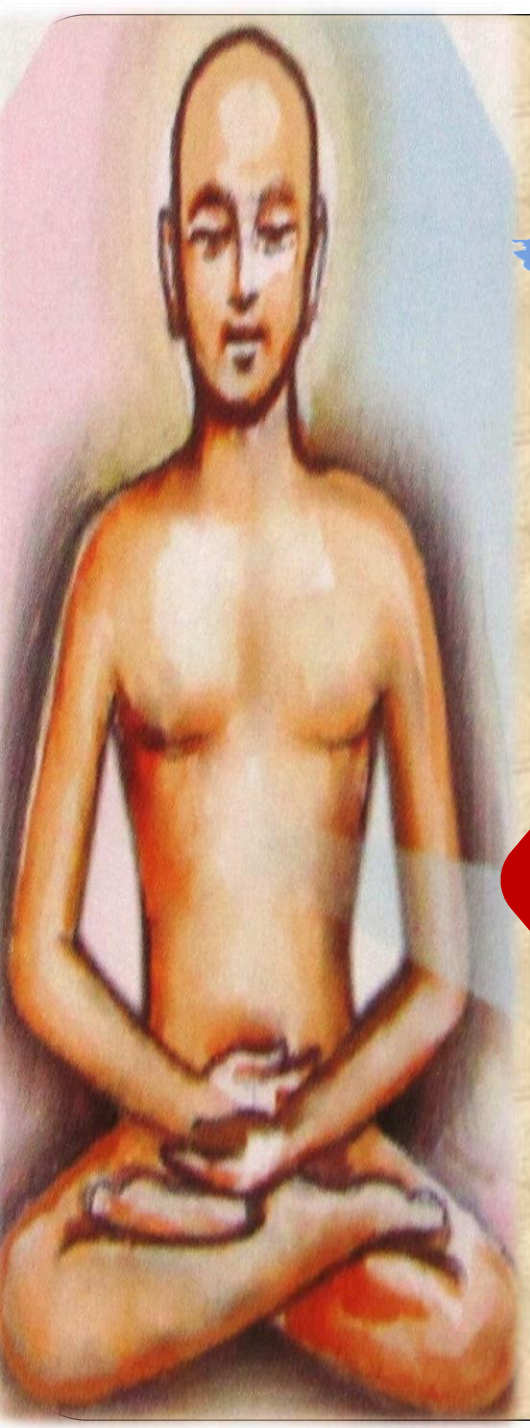

नय किसे कहते हैं?

वस्तु के एकदेश को विषय करने वाला ज्ञान नय कहलाता है।

www.JainKosh.org

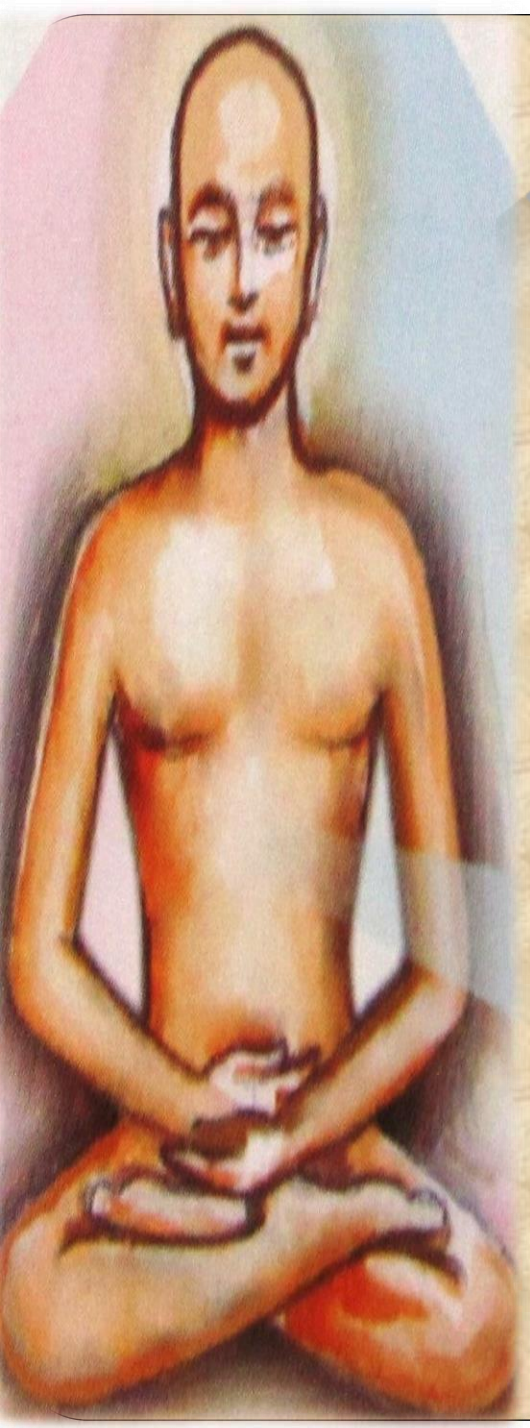

निक्षेप किसे कहते हैं?

प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुये लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं।

www.JainKosh.org

स्वरूपाचरणचारित्र और अरिहन्त दशा

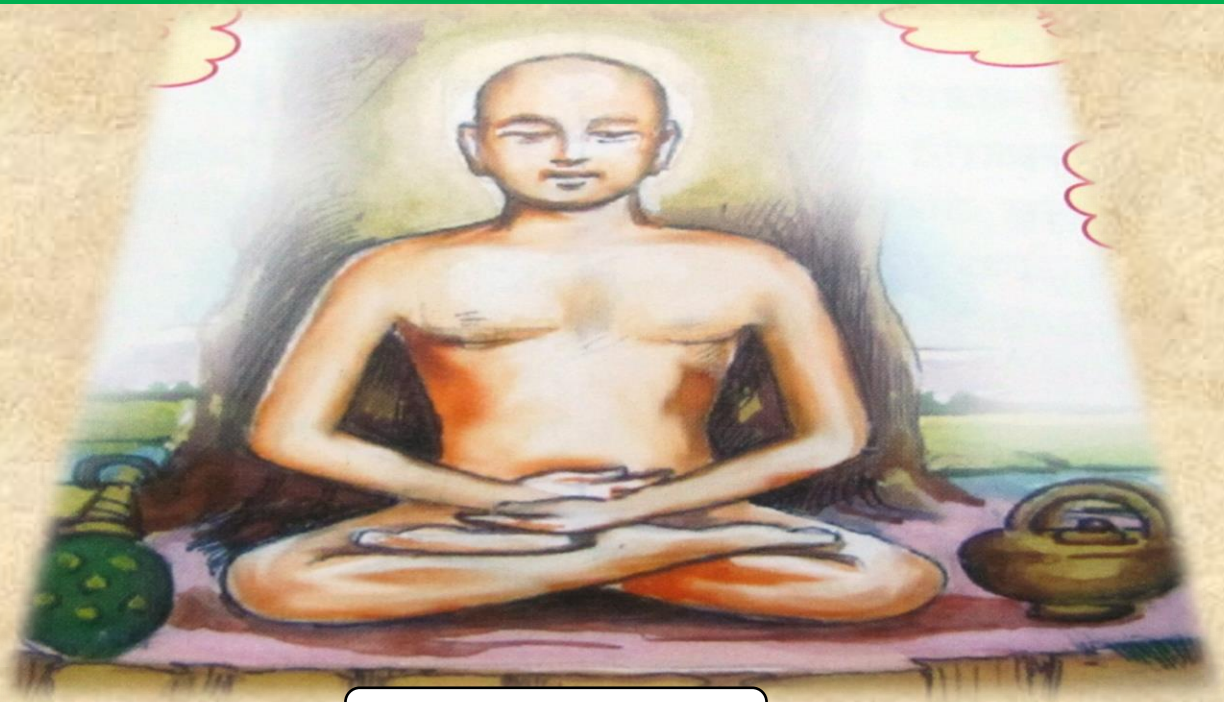

www.JainKosh.org

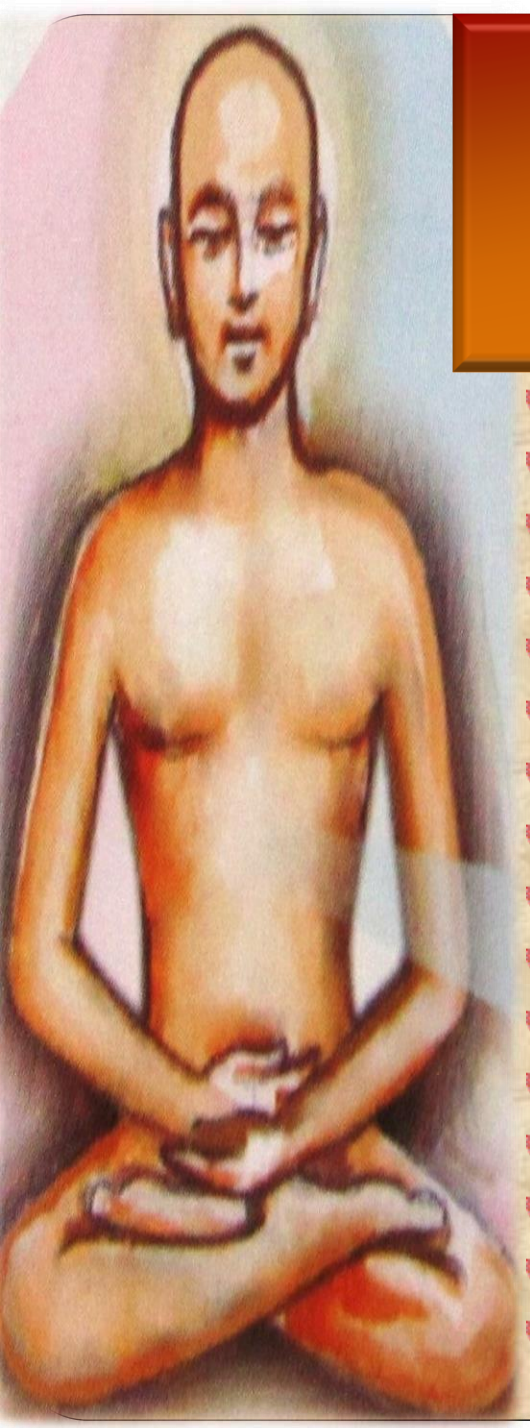

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११ ॥

- चिन्त्य= चिंतवन करके
- थिर भये= लीन होने पर
- तिन= उन मुनियों को जो
- अकथ= कहा न जा सकें
- लह्यो= होता है
- नाग= नागेन्द्र को,
- नरेन्द्र= चक्रवर्ती को
- अहमिन्द्र को= या अहमिन्द्र को
- नाहीं कह्यो= कहने में नहीं आया
- शुकल ध्यानाग्नि करि= शुक्लध्यानरूपी अग्नि द्वारा
- चउघाति विधि कानन= चार घातिकर्मोंरूपी वन
- दह्यो= जल जाता है
- लख्यो= प्रत्यक्ष जान लेते हैं,
- भविलोक को= भव्यजीवों को
- शिवमग= मोक्षमार्ग
- कह्यो= बतलाते हैं ।

www.JainKosh.org

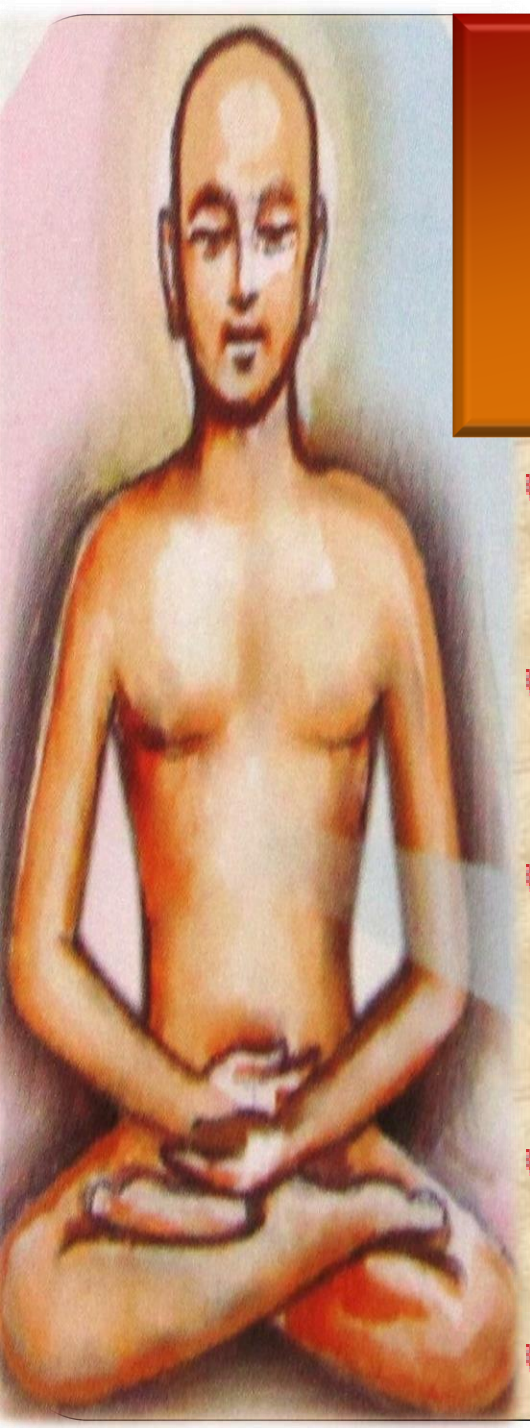

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११ ॥

- स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनिराज जब उपर्युक्तानुसार चिंतवन विचार करके आत्मा में लीन हो जाते हैं;
- तब उन्हें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती या कल्पातीत देव को भी नहीं होता ।
- यह स्वरूपाचरणचारित्र प्रकट होने के पश्चात् स्वद्रव्य में उग्र एकाग्रता से शुक्लध्यानरूप अग्नि द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होता है ।
- अरिहन्त दशा तथा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसमें तीनकाल और तीनलोक के समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते हैं और
- तब भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं ॥

www.Jainkosh.org

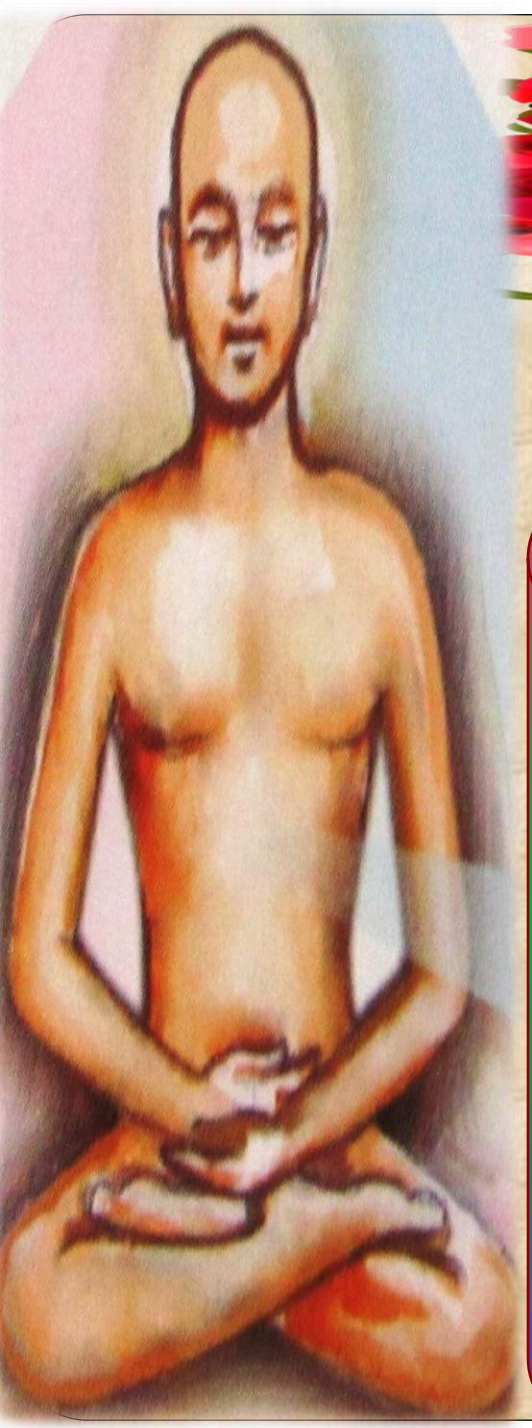

स्वरुपाचरण चारित्र का फल क्या है?

इसके द्वारा मुनिराज ४ घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान को अर्थात् अरहंत दशा को प्रगट कर लेते हैं

www.JainKosh.org

सिद्धदशा का वर्णन

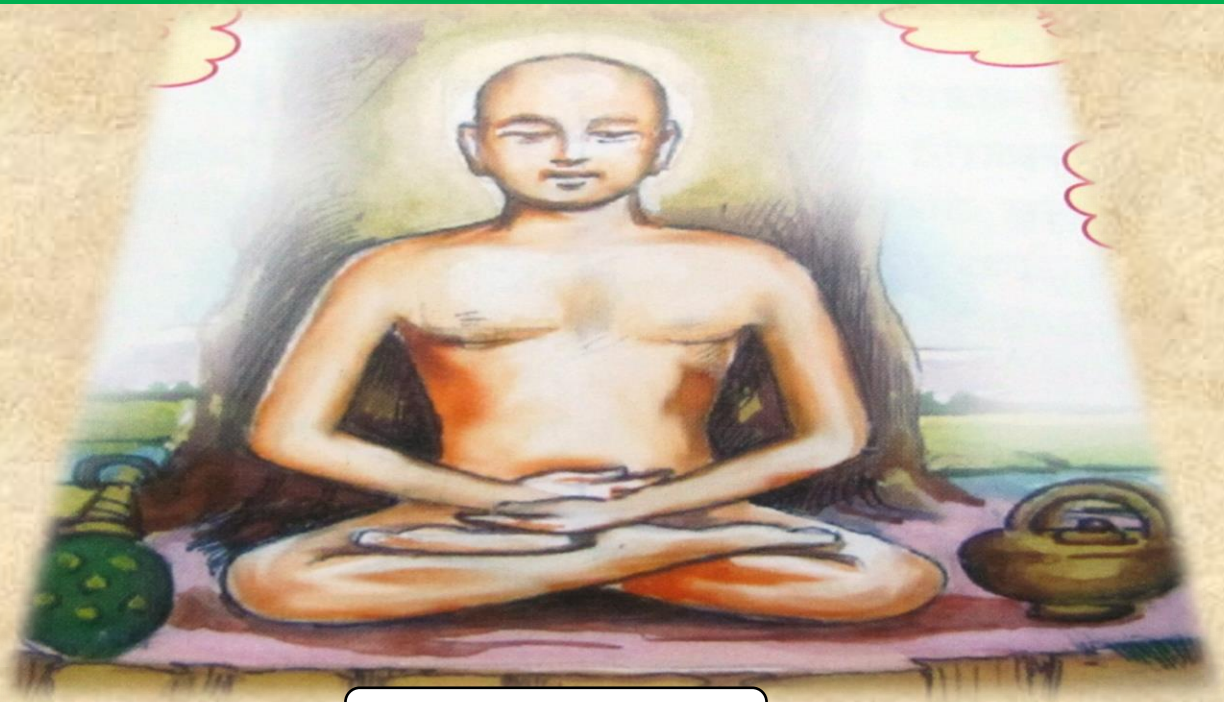

www.JainKosh.org

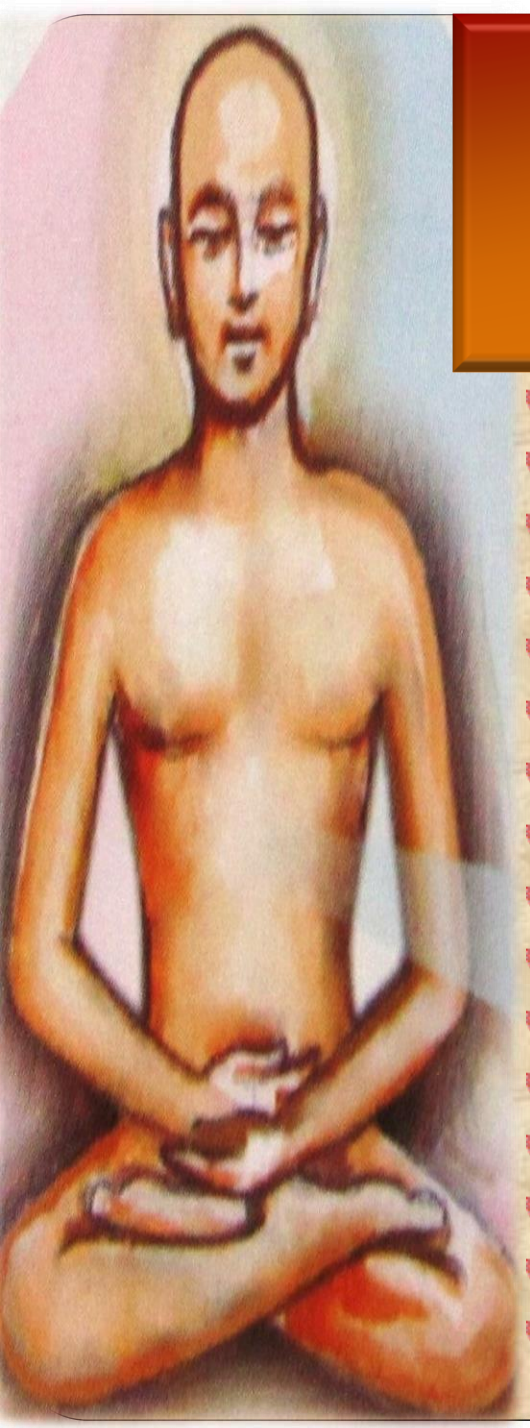

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं ।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२ ॥

- पुनि= केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात्
- विधि= कर्मों का
- घाति= नाश करके
- छिनमाहिं= कुछ ही समय में
- अष्टम भू= आठवीं पृथ्वी ईषत् प्राग्भार मोक्ष क्षेत्र में
- वसैं= निवास करते हैं
- वसु कर्म= आठ कर्मों का
- लसैं= शोभायमान होते हैं
- संसार खार अपार पारावार= संसाररूपी खारे तथा अगाध समुद्र को
- तरि= पार करके
- तीरहिं= किनारे पर
- अकल= शरीररहित,
- शुचि= शुद्ध-निर्दोष
- चिद्रूप= दर्शन-ज्ञान-चेतनास्वरूप तथा
- अविनाशी= नित्य-स्थायी
- भये= होते हैं ।

www.JainKosh.org

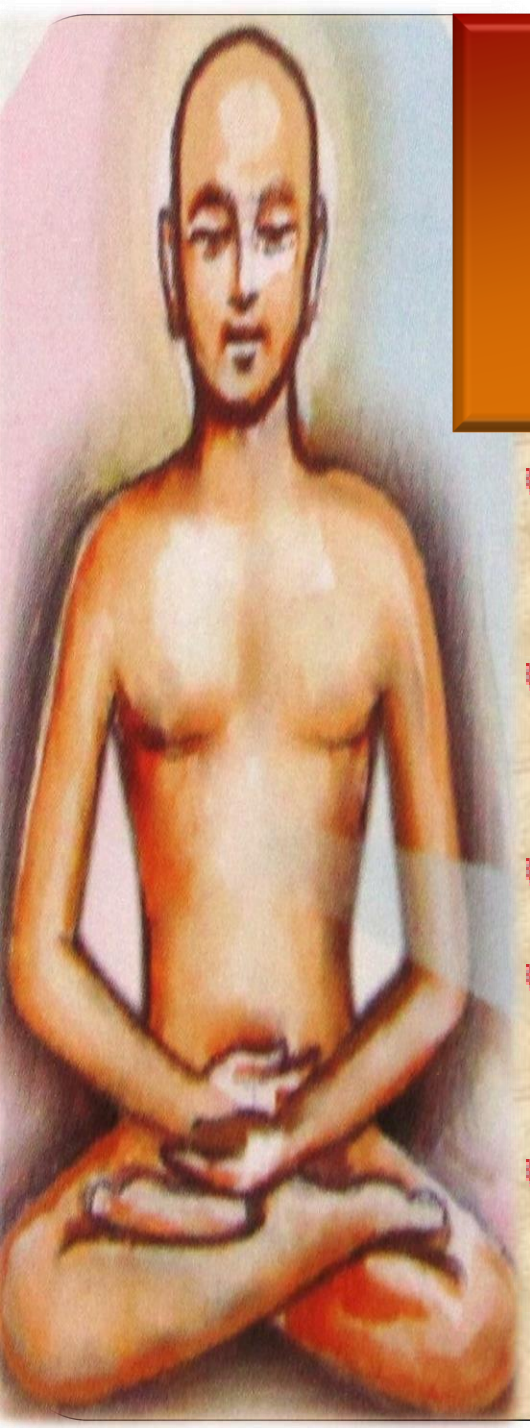

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं ।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२ ॥

- अरिहन्त दशा प्राप्त करने के पश्चात् अघाति कर्मों का क्रमशः अभाव कर जीव पूर्ण शुद्ध दशा को प्रकट करता है
- और उससमय असिद्धत्व नामक अपने उदयभाव का नाश होता है तथा चार अघाति कर्मों का भी स्वयं सर्वथा अभाव हो जाता है ।
- सिद्धदशा में सम्यक्त्वादि आठ गुण प्रकट होते हैं ।
- ऐसे जीव संसाररूपी दुःखदायी तथा अगाध समुद्र से पार हो गये हैं
- और वही जीव निर्विकारी, अशरीरी, अमूर्तिक, शुद्ध चैतन्यरूप तथा अविनाशी होकर सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं ॥१२ ॥

www.JainKosh.org

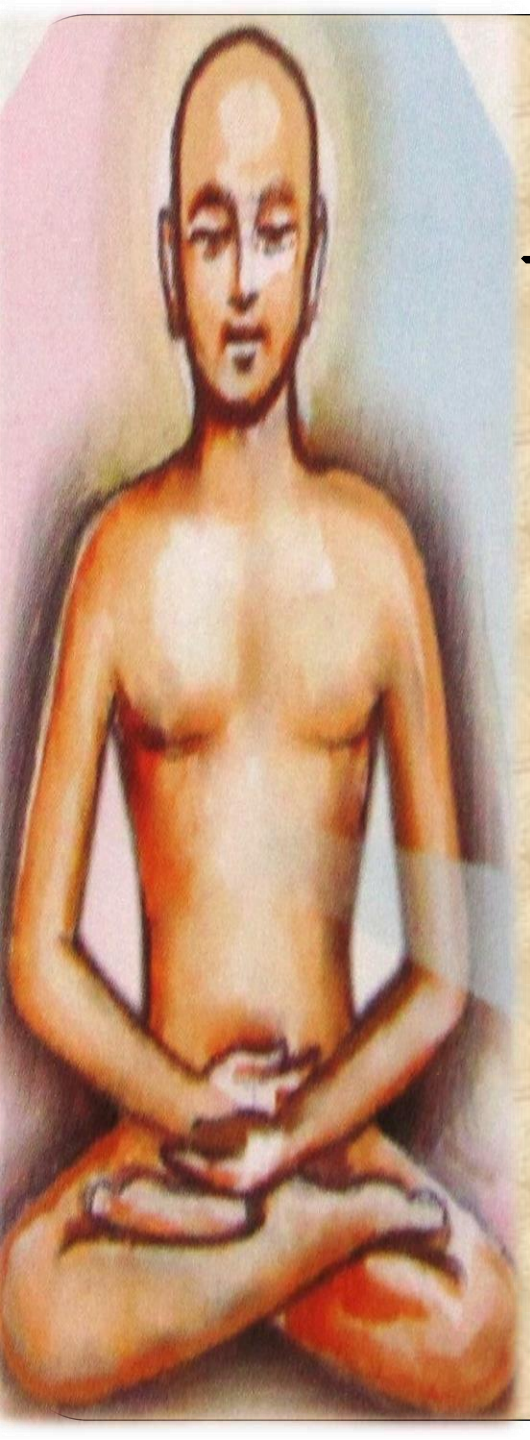

ज्ञानावरण	• केवलज्ञान
दर्शनावरणी	• केवलदर्शन
वेदनीय	• अव्याबाध सुख
मोहनीय	• सम्यक्त्व गुण
आयु	• अवगाहनत्व
नामकर्म	• सूक्ष्मत्व
गोत्र	• अगुरुलघुत्व
अन्तराय	• वीर्य

कौन से कर्मों के क्षय से कौन सा गुण प्रगट होता है?

मोक्षदशा का वर्णन

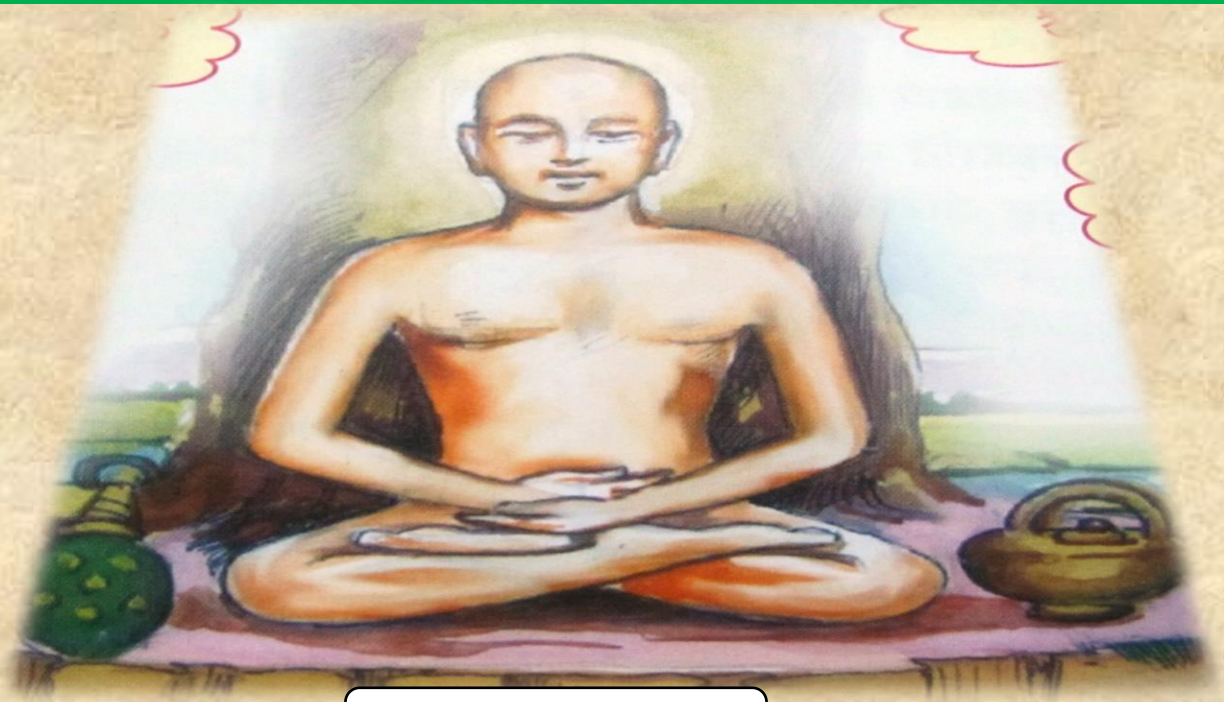

www.JainKosh.org

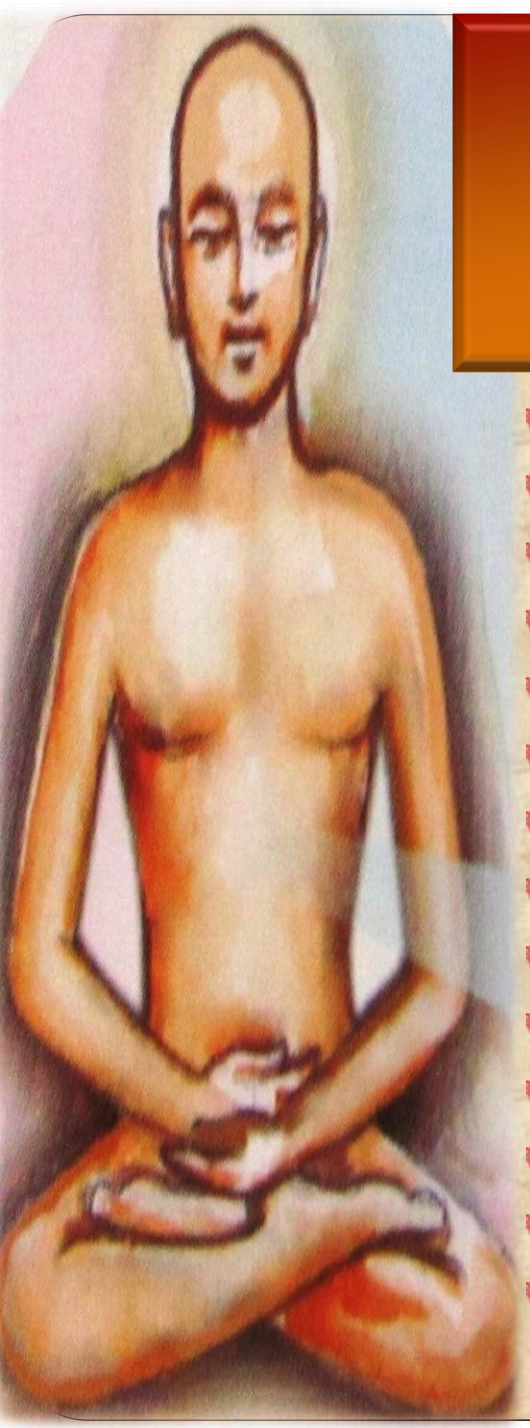

निजमाहिं लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३ ॥

- निजमाहिं= उन सिद्धभगवान के आत्मा में
- लोक-अलोक= लोक तथा अलोक के
- प्रतिबिम्बित थये= झलकने लगते हैं हैं । वे
- यथा= जिसप्रकार
- परिणये= परिणमित हुए हैं
- रहिहैं= रहेंगे ।
- जे= जिन
- नरभव पाय= पुरुष पर्याय प्राप्त
- कारज= कार्य
- धनि धन्य हैं= महान धन्यवाद के पात्र हैं
- तिनही= उन्हीं जीवों ने
- पंच प्रकार= पाँच प्रकार के
- तजि= छोड़कर
- वर= उत्तम

www.JainKosh.org

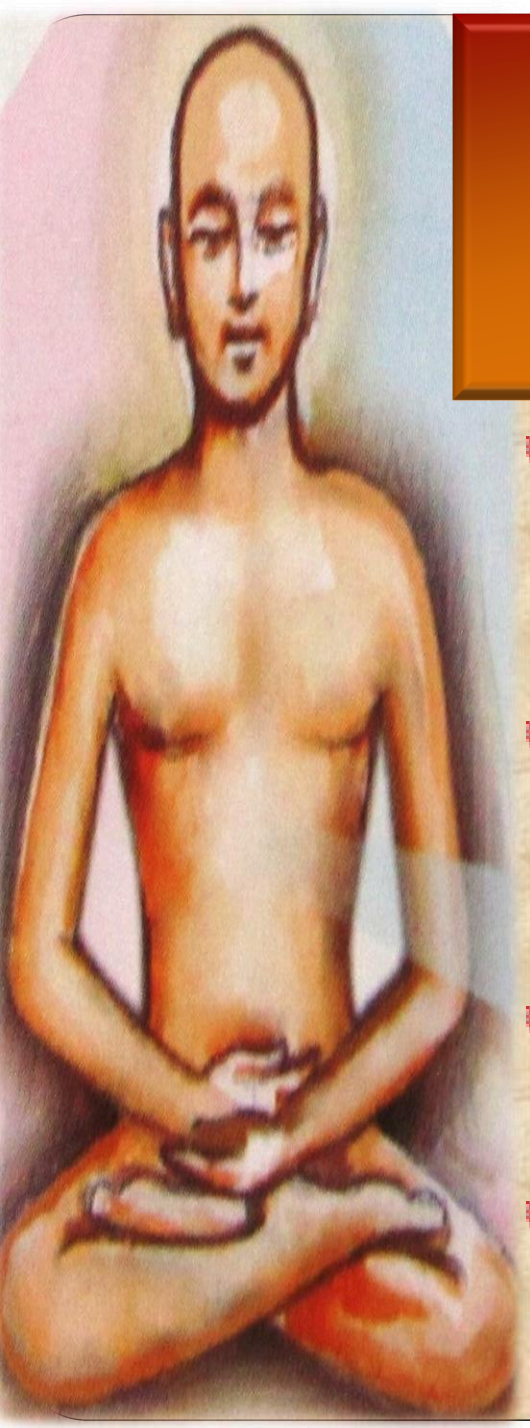

निजमाहिं लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३ ॥

- सिद्ध भगवान के आत्मा में केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोक अपने-अपने गुण और तीनोंकाल की पर्यायों सहित एकसाथ, स्वच्छ दर्पण के समान स्पष्ट ज्ञात होते हैं
- वे पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं तथा वह दशा वहाँ विद्यमान अन्य सिद्ध-मुक्त जीवों की भाँति अनन्तानन्त काल तक रहेगी
- यह मनुष्यपर्याय प्राप्त करके जिन जीवों ने शुद्ध चैतन्य की प्राप्तिरूप कार्य किया है, वे जीव प्रशंसा के पात्र हैं
- और उन्होंने अनादिकाल से चले आ रहे पंच परावर्तनरूप संसार के परिभ्रमण का त्याग करके उत्तम मोक्षसुख प्राप्त किया है ॥

www.JainKosh.org

रत्नत्रय का फल और आत्महित में प्रवृत्ति का उपदेश

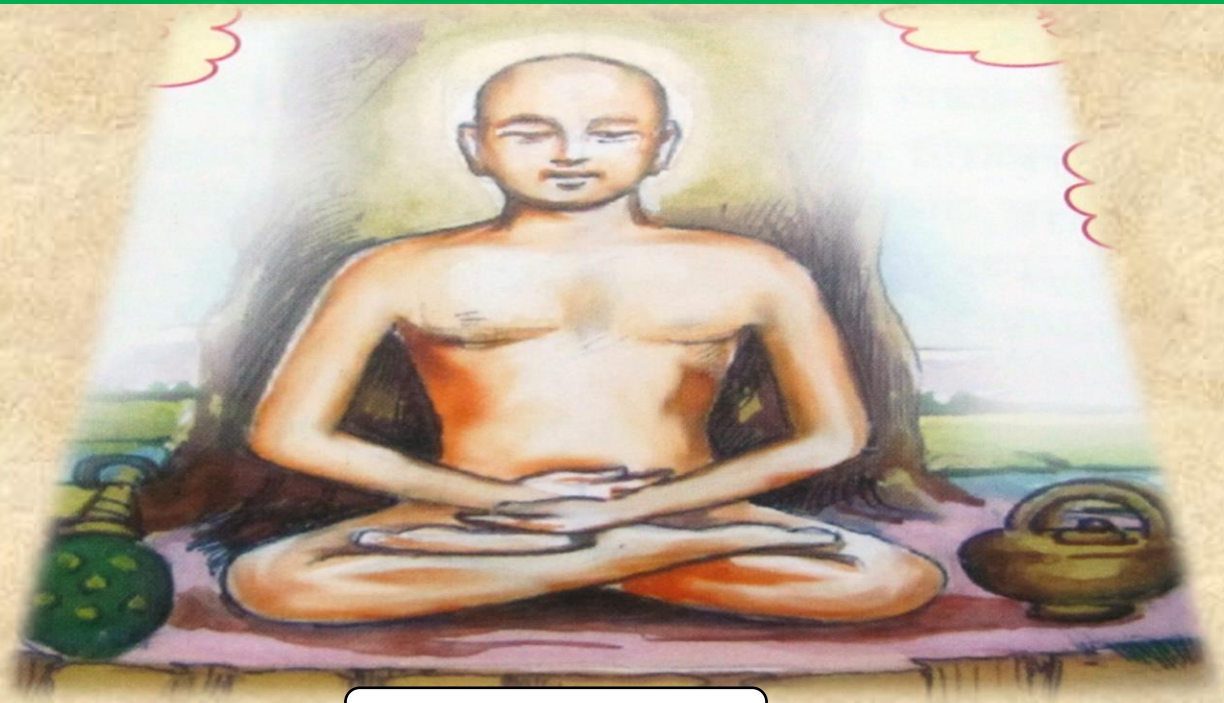

www.JainKosh.org

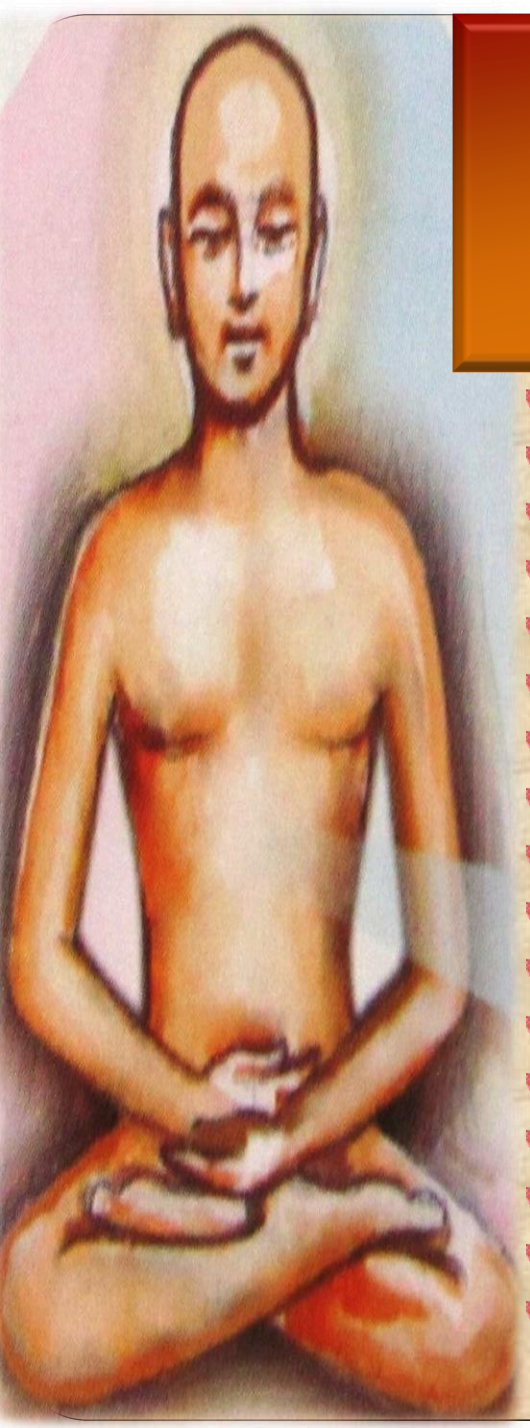

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ ।
जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४ ॥

- बड़भागि= जो महा पुरुषार्थी जीव
- मुख्योपचार= निश्चय और व्यवहार
- दुभेद= ऐसे दो प्रकार के
- धरैं अरु धरेंगे= धारण करते हैं और करेंगे
- लहैं= प्राप्त करते हैं
- सुयश-जल= सुकीर्तिरूपी जल
- जग-मल= संसाररूपी मैल का
- इमि= ऐसा
- हानि= छोड़कर
- साहस= पुरुषार्थ
- ठानि= करने
- आदरौ= ग्रहण करो कि
- रोग जरा= रोग या वृद्धावस्था
- न गहै= न आये
- झटिति= शीघ्र
- निज हित= आत्मा का हित
- करौ= कर लेना चाहिए

www.JainKosh.org

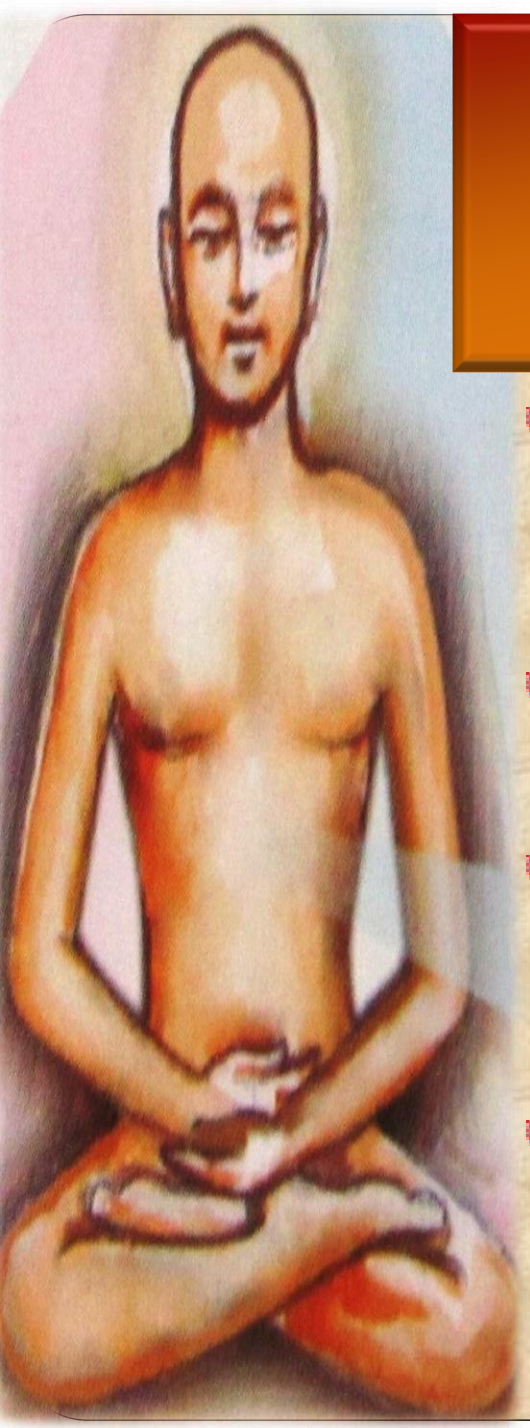

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ ।
जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४ ॥

- जो सत्पुरुषार्थी जीव सर्वज्ञ-वीतराग कथित निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप जानकर, मोक्षमार्ग को धारण करते हैं तथा करेंगे, वे जीव पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं और होंगे ।
- जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और होंगे, उनका सुकीर्तिरूपी जल कैसा है?
- कि जो सिद्ध परमात्मा का यथार्थ स्वरूप समझकर स्वोन्मुख होनेवाले भव्यजीव हैं, उनके संसार मलिनभाव रूपी मल को हरने का निमित्त है ।
- ऐसा जानकर प्रमाद को छोड़कर, साहस सच्चा पुरुषार्थ करके यह उपदेश अङ्गीकार करो कि जबतक रोग या वृद्धावस्था ने शरीर को नहीं घेरा है, तबतक शीघ्र वर्तमान में ही आत्मा का हित कर लो ॥

www.JainKosh.org

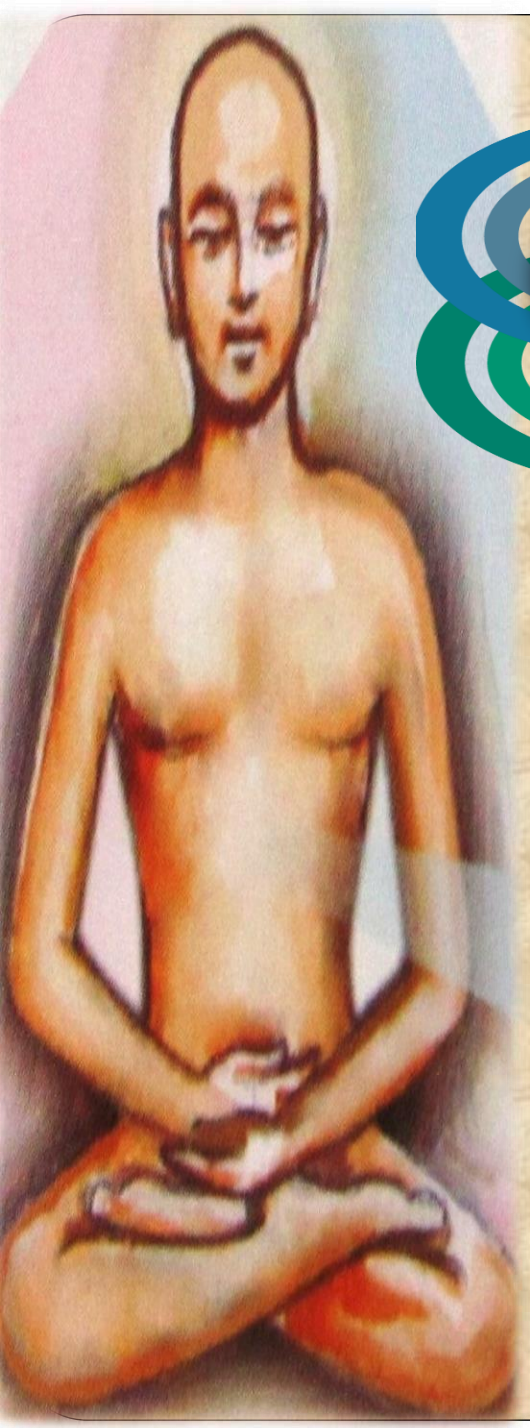

रत्नत्रय याने

सम्यग्ज्ञान

सम्यग्दर्शन

सम्यक्चारित्र

की एकता

www.JainKosh.org

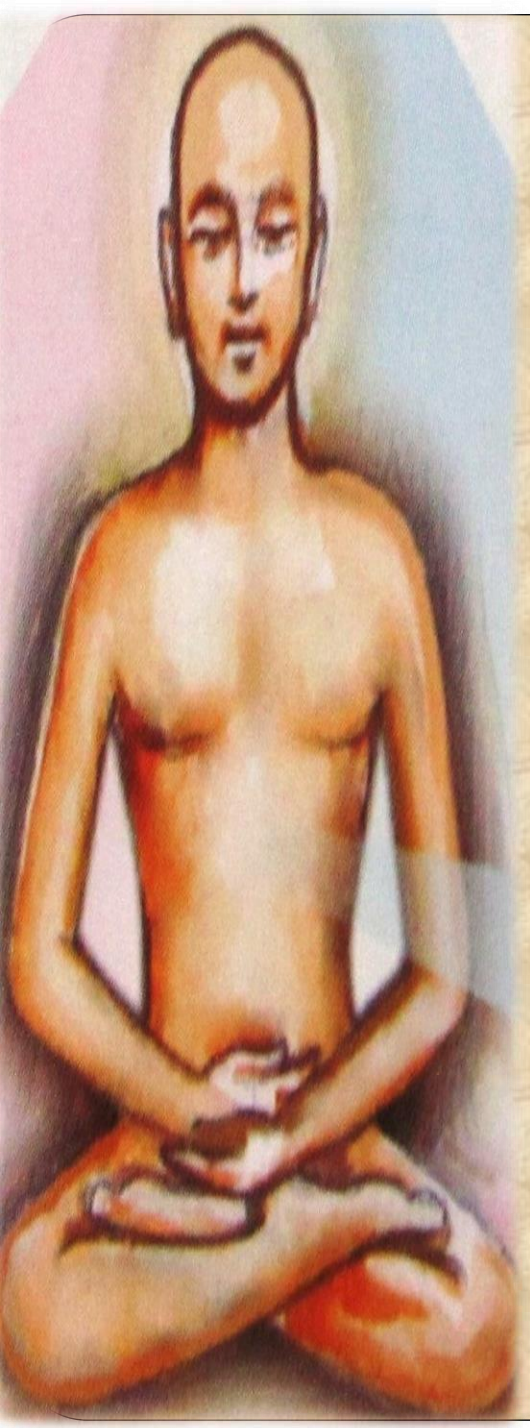

रत्नत्रय के प्रकार

रत्नत्रय

निश्चय (मुख्य)

व्यवहार (उपचार)

www.JainKosh.org

निश्चय रत्नत्रय

- निश्चय सम्यग्दर्शन
  - आत्मस्वरूप की श्रद्धा
- निश्चय सम्यग्ज्ञान
  - आत्मस्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान
- निश्चय सम्यक्चारित्र
  - आत्मस्वरूप में निश्चल स्थिति

व्यवहार रत्नत्रय

- व्यवहार सम्यग्दर्शन
  - ७ तत्त्वों और देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा
- व्यवहार सम्यग्ज्ञान
  - जैन आगम का ज्ञान
- व्यवहार सम्यक्चारित्र
  - व्रतादि चारित्र

www.JainKosh.org

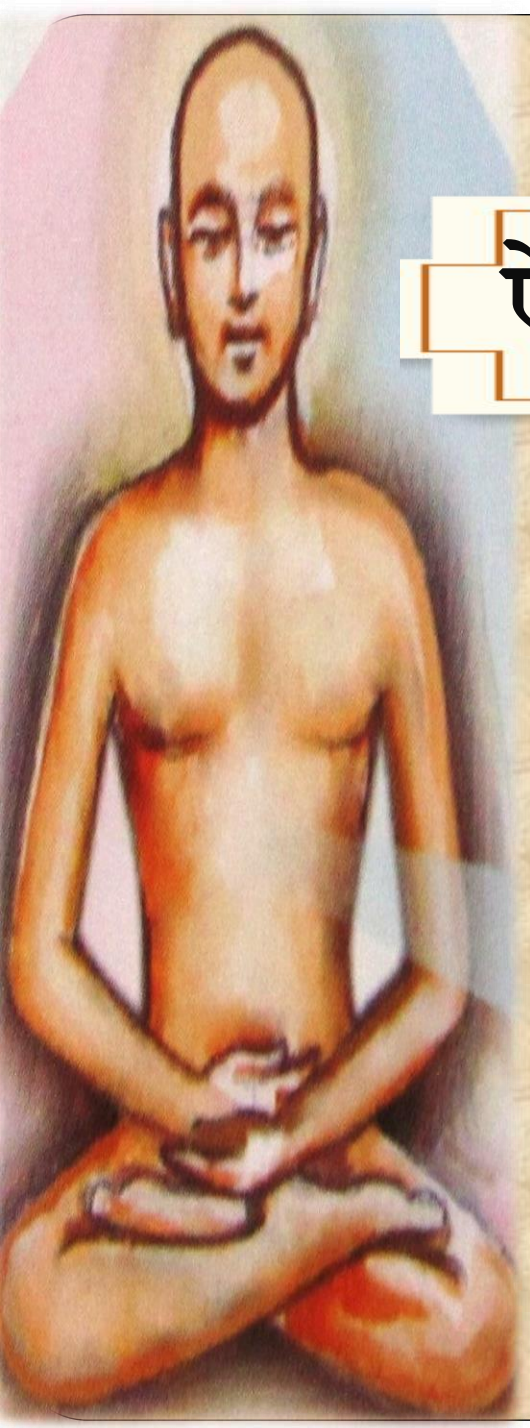

ऐसे रत्नत्रय के धारण करने का क्या फल होगा?

१. संसार रूपी मैल को नष्ट होता है

२. मोक्ष की प्राप्ति होती हैं

www.JainKosh.org

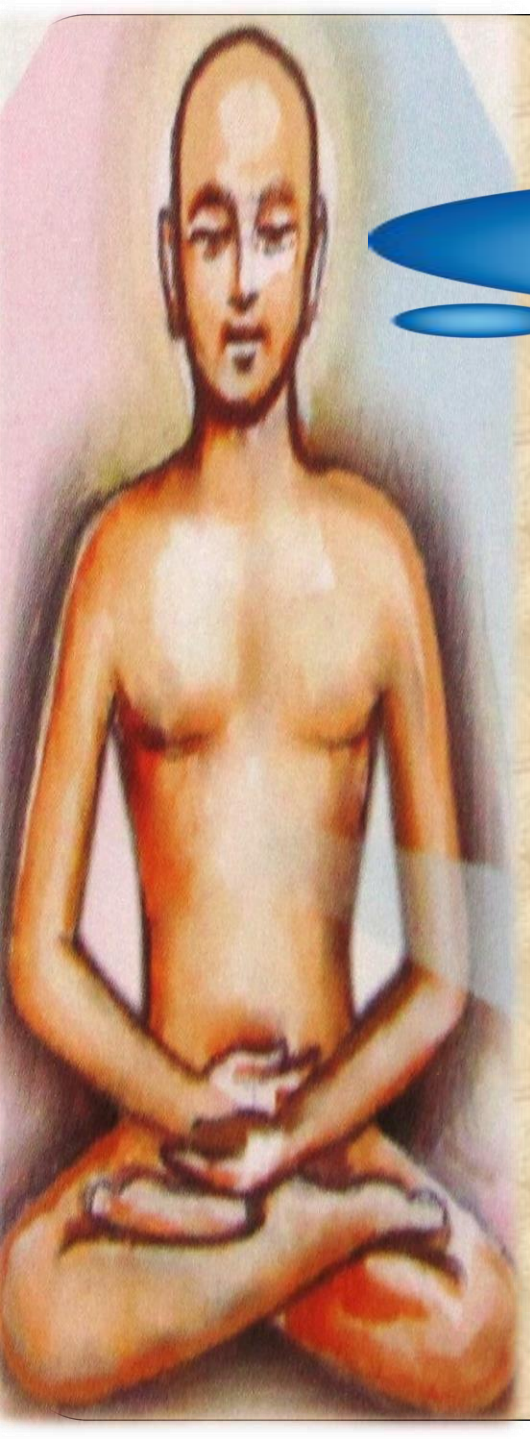

अतः हमें रत्नत्रय धारण करना चाहिए?

- जीवन के अंत समय में?
- बच्चों की शादी आदि कार्य निपटा कर?
- धनादि की व्यवस्था करके?
- रोग और बुढ़ापा नहीं आये उसके पहले ही?

www.JainKosh.org

अन्तिम सीख

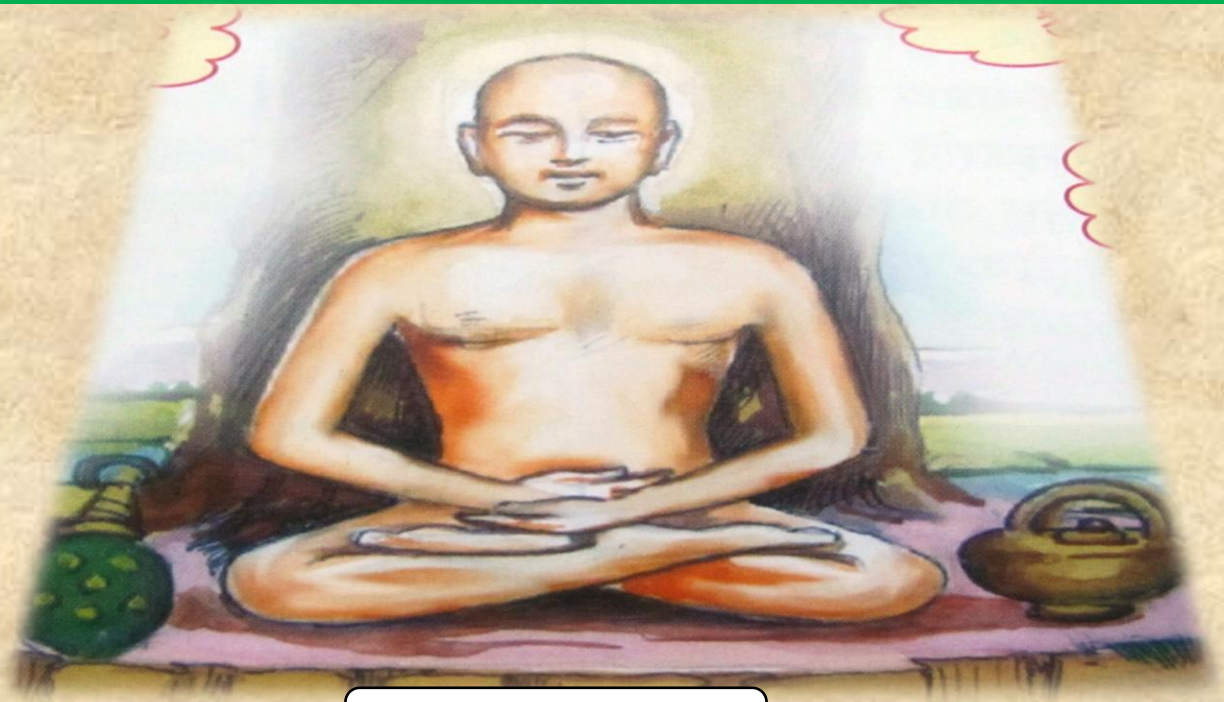

www.JainKosh.org

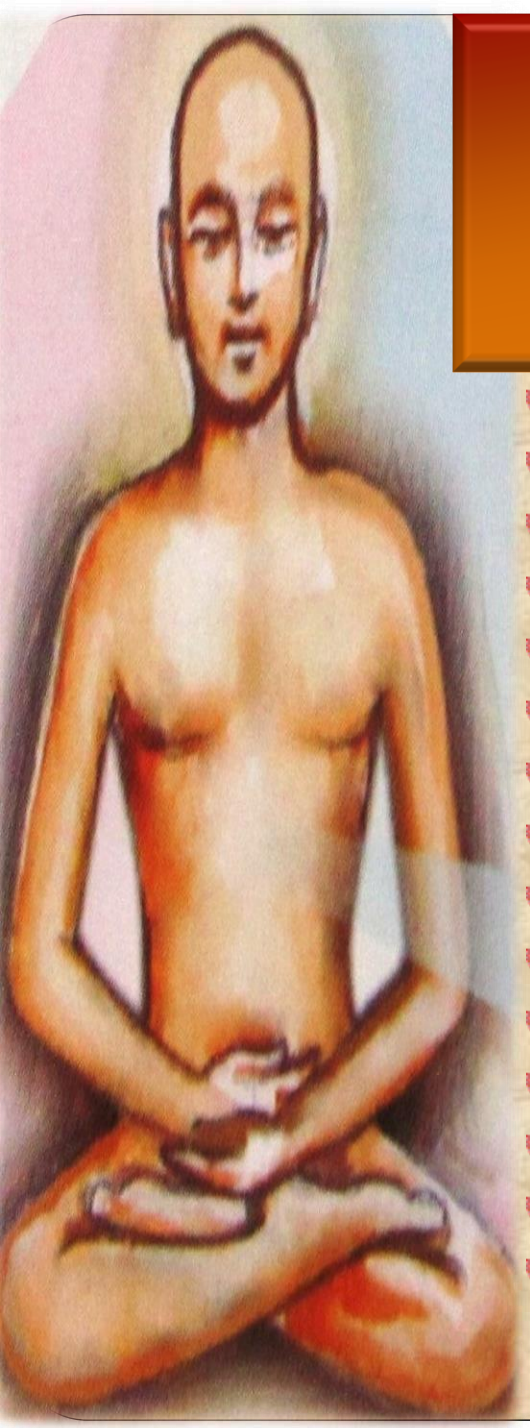

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै ।
अब ''दौल''! होउ सुखी स्वपद-रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५ ॥

- राग-आग= रागरूपी अग्नि
- दहै= जला रही है,
- तातैं= इसलिये
- समामृत= समतारूप अमृत का
- सेइये= सेवन करना चाहिए ।
- चिर भजे= अनादिकाल से सेवन किया है
- निजपद= आत्मस्वरूप को
- बेइये= जानना चाहिए
- पर पद में= परपदार्थों में
- रच्यो= आसक्त-सन्तुष्ट
- सहै= सहन करता है?
- दौल!= हे दौलतराम!
- रचि= लगकर
- दाव= अवसर म
- त चूकौ= न गँवाओ

www.JainKosh.org

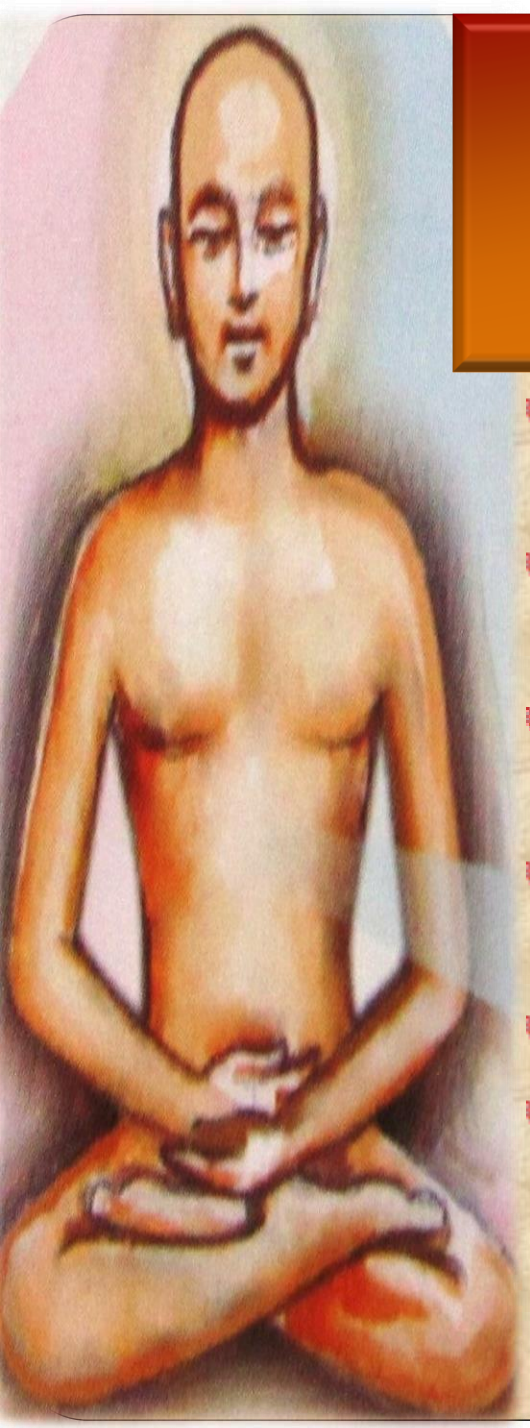

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै ।
अब ''दौल''! होउ सुखी स्वपद-रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५ ॥

- यह राग रूपी अग्नि अनादिकाल से निरन्तर संसारी जीवों को जला रही है दुःखी कर रही है
- इसलिये जीवों को समतारूपी अमृत का पान करना चाहिए, जिससे राग-द्वेष मोह का नाश हो ।
- विषय-कषायों का सेवन विपरीत पुरुषार्थ द्वारा अनादिकाल से कर रहा है; अब उसका त्याग करके आत्मपद प्राप्त करना चाहिए ।
- तू दुःख किसलिये सहन करता है? तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और अनन्तवीर्य है, उसमें लीन होना चाहिए ।
- ऐसा करने से ही सच्चा-सुख मोक्ष प्राप्त हो सकता है ।
- इसलिये हे दौलतराम! हे जीव! अब आत्मस्वरूप को प्राप्त कर! आत्मस्वरूप को पहिचान! यह उत्तम अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता, इसलिये इसे न गँवा । सांसारिक मोह का त्याग करके मोक्षप्राप्ति का उपाय कर !

www.JainKosh.org

ग्रन्थ-रचना का काल और उसमें आधार

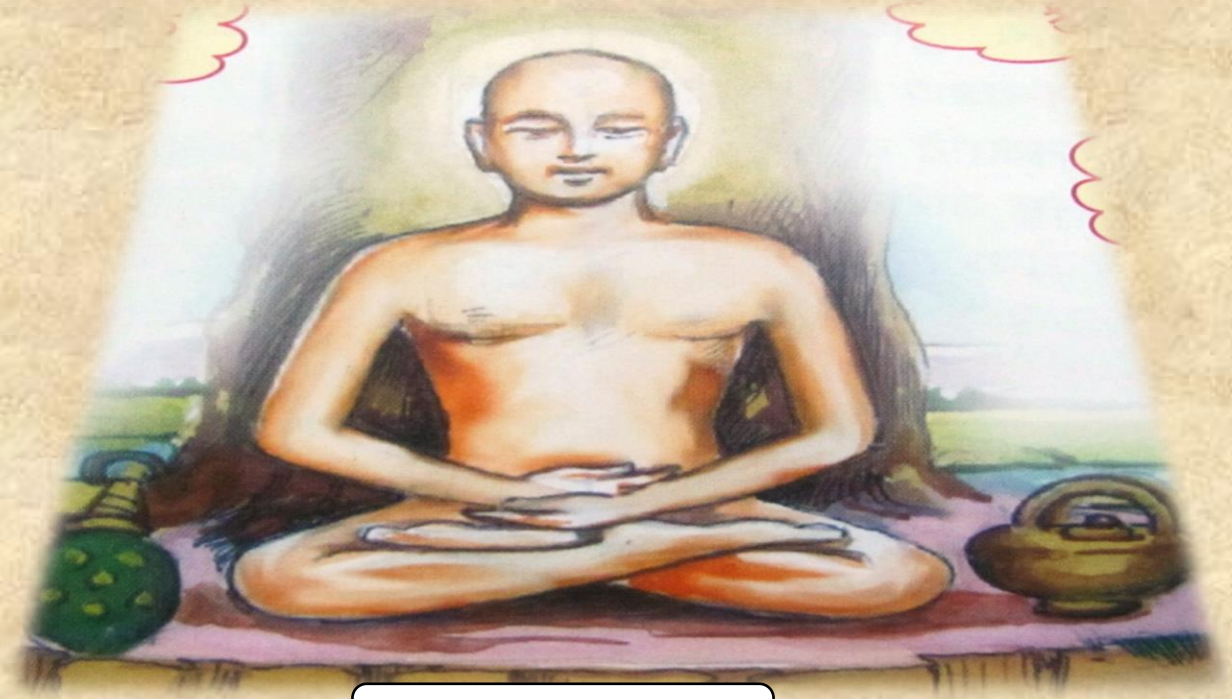

www.JainKosh.org

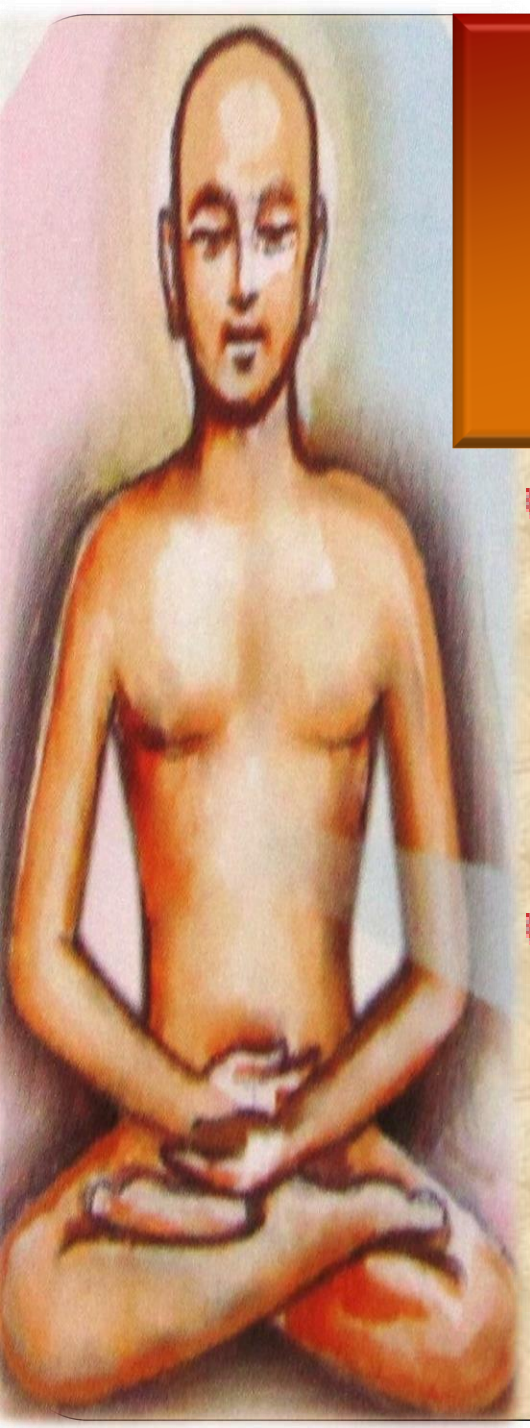

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख ।
कर्‌यो तत्त्व-उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥१६ ॥

- पण्डित बुधजनकृत छहढाला के कथन का आधार लेकर मैंने (दौलतराम ने) विक्रम संवत १८९१, वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है ।
- मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार-समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो ।

www.JainKosh.org

- Reference : तत्त्वार्थसूत्र, तत्त्वार्थमंजूषा, रत्नकरंड-श्रावकाचार

Presentation developed by
Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889